श्रीः ।

सौन्दर्य्यलहरी.

श्रीमच्छङ्कराचार्य्यप्रणीता.

सेयं

श्रीसुन्दरीमहादेव्युपासकानां शाक्तजनानां

मनोरञ्जनार्थम्

आगरानगरस्थपण्डितराधाकृष्णशर्म्मकृत

ब्रजभाषाटीकया समलंकृता

पं. श्रीधर शिवलालात्मजेन

पं. कृष्णलालशर्मणा

स्वीय "ज्ञानसागर" मुद्रणालये

मुद्रिता प्रकाशते.

यस्या इयमाद्यावृत्तिः ।

संवत् १९६३. शके १८२८.

॥ श्रीमद्गणेशगौरीगुरुभ्यो नमः ॥

अथ सौन्दर्य्यलहरीप्रारम्भः ॥

श्रीस्वामी शङ्कराचार्य्यप्रणीता ।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं, नचे-
देवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि । अतस्त्वामाराध्यां
हरिहरविरञ्चादिभिरपि, प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृत-
पुण्यः प्रभवति ॥ १ ॥

भाषाटीका—हे भवानीजी ! जो शिव परब्रह्म माया शक्ति करके युक्त होय तौ प्रभुता विधान करनेको अर्थात् सृष्टि, स्थिति, नाश, इन्हें करनेको समर्थ होय, क्योंकि मायाविशिष्टही ब्रह्मको सृष्टि आदि कर्तृत्व प्रसिद्ध है, और जो मायायुक्त न होय तौ चलनेको भी समर्थ नहीं होते, क्योंकि पूर्ण का चलन असंभव है, इस कारण हरि आदि देवताओंसे उपासना योग्य जो तुम तिन्हें अकृत पुण्य पुरुष कैसें प्रणाम व स्तुति करनेको समर्थ होंय, यह श्रीस्वामीजी आचार्य करुणा पूर्वक उन पुरुषोंका शोकमानकेही पुण्यार्थ जहां तहां अन्य देवोपासना भी प्रकाश करते हैं, अथवा— शिव करके ककारसे आदि लकार पर्यंत मातृका वर्णही प्रसिद्ध हैं, और शब्द शक्ति करके अकार आदि विसर्गांत स्वर प्रसिद्ध हैं, तहां शिवकी ककार आदि व्यञ्जन होय जब स्वर अकारादिक करके युक्त होय तबही दूसरे को बोध करानेमें समर्थ होते हैं, प्रयोजन यह है कि शिव शब्द भी इकार अकार स्वर बिना बुद्धिगोचर नहीं होता, अथवा

शिव शब्द करके हकार तंत्रशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है, और शक्ति शब्द करके श्रीबालाजीका बीज सौं यह जब शिव जो हकार सो बालाजीका बीज मन्त्र दोनों मिलावे जांय तब 'ह्सौं' यह पराप्रसाद परामंत्र होय तब शिव शक्ति युक्त होकर समर्थ होता है, अथवा शिव कहनेसे शिव व्यंजनस्वरूप और शक्ति शिव स्वरूप नमः दोनोंके मिलानेसे, नमः शिव, ऐसा हुआ यहां नमःके साथ व्याकरणकी रीतिसे चतुर्थी विधान है, इससे शिवके स्थान, शिवाय, ऐसा हुआ "नमः शिवाय" यह मंत्र पूर्ण हुआ ये सृष्टि आदि विषयमें समर्थ भी हुआ, अब प्रयोजन यह है कि शिव जो व्यंजन हकार वर्ण शक्ति वा स्वर नमः शब्द वा मातृ वर्ण इकार अकार वा नमः शब्द वा बालाजी का बीज सौं इन तीनोंमेंसे जो किसी प्रकार युक्त न होय तो कदापि विना शक्तिके योजना दृश्य वाच्य कुछ नहीं होसकता ॥ १ ॥

तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवं, विरिञ्चिः संचिन्वन् विरचयति लोकानविकलम् । वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां, हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम् ॥ २ ॥

भा० टी०—श्रीभवानीजीभी सगुण और निर्गुण इन दोनों रूप करके वर्तमान हैं, इस कारण उन विना कुछभी नहीं हो सकता है हे भवानीजी! तुह्मारी चरण रजको संचय करके ब्रह्मा चतुर्दश भुवनोंको यथा पूर्वक बनाते हैं और श्रीविष्णु उन भुवनोंको शेषजीकी मूर्त्ति करके धारण करते हैं और श्रीरुद्र सदाशिवजी उन भुवनोंको चूर्ण करके उनके भस्मसे स्नान करते हैं, प्रयोजन यह है कि श्रीभगवतीजीके चार चरण कमल तहां शुक्ल वर्ण सत्व गुण प्रधान प्रथम चरण रक्तवर्ण और रजोगुण द्वितीय चरण सो यह दोनों आज्ञाकारी चक्रमें स्थित हैं, तहां रक्तवर्ण रजोगुणसे ब्रह्मा सृष्टि

रचते हैं, और शुक्लवर्ण सत्त्वगुणसे विष्णु सृष्टिको धारण करते हैं, और मिश्र वर्ण श्रीभगवतीजीका तृतीय चरण है सो हृदय कमलमें स्थित है, तहां मिश्र वर्ण तमोगुणसे श्रीरुद्ररूप संहार करते हैं, और चतुर्थ चरण श्रीजीका निर्गुण है सो सहस्रार स्थानमें है, वह श्रीपरम शिवजीका स्थान है सो बुद्धिसे परे है इस कारण अवाच्य है ॥ २ ॥

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोद्दीपनकरी, जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिशिरा। दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ, निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती ॥ ३ ॥

भा०टी०—हे भगवतीजी! लोक चतुर शास्त्ररहितजनोंको, और अधीत शास्त्र लोकरहितजनोंको, और दरिद्री दीन जनोंको, तथा अल्प आयु जनोंको, दुःखदूर करके निरंतर सुखके अर्थ सेवा करने योग्य आपही हो, यह अविद्यानां, इस श्लोककरिके वर्णन करते हैं—तहां जो विद्यावान् पुरुष नहीं, और तुम्हारी सेवा करे—तिसके अंतःकरणमें तुम द्वादश सूर्यके समान प्रकाश करो हो, और जो मनुष्य चतुर नहीं तिनको चैतन्यके गुच्छेकी प्रणाली हो, और जो दरिद्री हैं वह तुम्हारे चरणसेवाकरें तो चिंतामणिके तुल्य गुणोंको प्राप्त हों अर्थात् जैसे चिंतामणि सब वस्तु देय है तैसेही वह भी पुरुष औरोंको दाता होंय—और जो मनुष्य जन्म समुद्रमें डूबे हैं अर्थात् अल्पायु हैं कोई भी लोकादिका साधन नहीं बना तिनके उद्धारके अर्थ श्रीजी आदि वराहजीकी दाढहो अर्थात् उद्धार करनेमें आपही समर्थ हो—हे भवानीजी! आपके सिवाय और कौनकी स्तुति करें ॥ ३ ॥

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणः, त्वमेकानैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया । भयात्त्रातुन्दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं, शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥ ४ ॥

भा० टी०—अब और भी संपूर्ण देवताओंसे फल दानमें श्रीजीको विशेप उत्कर्ष वर्णन करते हैं-त्वदन्य इस श्लोक करिकें कहते हैं-कि हे भवानीजी! आपसे दूसरे देवता सबही हाथ करके वर तथा अभय देते हैं अर्थात् वर और अभय इनके देनेका उसी समय फल करते हैं जब देते हैं विना यत्न तो आपही देती हो-क्योंकि पूर्वहीसे वर तथा अभय प्रकटकर धारण करी हैं इस कारण भयसे रक्षा करनेमें और वांछासे अधिक दान देनेमें आपके चरण अर्थात् आपके चरणोंकी भक्ति परम निपुण है ॥ ४ ॥

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं, पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत् । स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा, मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥ ५ ॥

भा० टी०—हे भगवतीजी ! प्रणत जनोंको परमसौभाग्यको देनेवाली जो आप तिन्हें आराधन करके श्रीहरि नारी होकर समुद्र मथन समय मोहिनी रूप धरिके परमयोगी श्रीमहादेवजीको भी भुलावा देतेहुए और स्मर जो कामदेव सोभी भस्मीभूत अर्थात् अंगरहित है परंतु आपके चरणमें नमस्कारके प्रतापसे अपने शरीरसे महा मुनीश्वरोंको भी भ्रममें प्राप्त करदेते हैं-और आपकी सेवाहीके प्रतापसे रति जो कामदेव की स्त्री सो आदर पूर्वक नित्य नित्य उसके शरीरको पान करती भी नित्य नित्य नवीन संगम का सुख अनुभव करे है ॥ ५ ॥

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पंच विशिखा, वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः । तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपामपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिद-मनङ्गो विजयते ॥ ६ ॥

भा० टी०—हे हिमगिरि सुते—हे पार्वतीजी ! यह जो कामदेव है सो आपके कृपा कटाक्षके प्रतापसे संपूर्ण जगत्का विजय करे है, क्योंकि जिसके विजयकी सामग्री एकभी यथायोग्य नहीं—तहां पहिले धनुष सो तो पुष्पोंकी जो परम कोमल—दूसरे धनुष की मौर्वी प्रत्यंचा सो भ्रमरोंकी परम चलाय-मान—और हावभाव आदि बाण सोभी पांचही—और भी सहाय हैं सोभी वसंत ऋतु एक सनकालमें सायनहीं—और युद्धका साधन रथ—सोभी मल यमरुत—दक्षिण दिशाकी वायु परम मंदगति—और आपभी एकही तहां भी अंगरहित—हेभगवतीजी! ऐसी सामग्रीसे जगत् मात्रको जय करनेमें आपकी कृपाविना और वस्तुका संभव कैसे हो सकता है ॥ ६ ॥

क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा, परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना । धनुर्बाणान् पाशं सृणिम-पि दधाना करतलैः, पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहो-पुरुषिका ॥ ७ ॥

भा० टी०—उक्त श्लोक करिके श्रीभगवतीजीकी स्तुति भावमें परम अभिलाष पूर्वक प्रार्थना करते ध्यान वर्णन करते हैं—क्वणत्कांचीति—इस श्लोककरके कहतेहैं—कि हेभगवतीजी! ऐसी जो आपकी मूर्ति सो हमारे अग्र-भाग सर्वदा प्रकाश करो—अर्थात् काया वाणी मन इन तीनों करके हमारा अनुराग इस मूर्तिमें सर्वदा रहो—कैसी वह आपकी मूर्ति है कि जिसके विषे

शब्द करती परम सुंदर क्षुद्रघंटिका नाना रत्नोंकी विराजमान—और हाथि-योंके बच्चोंके मस्तक समान जिसके स्तन और कटि भागमें परम सूक्ष्म और शरद ऋतुके पूर्ण चंद्र समान जिसमें श्रीमुख और करकमलों करिके धनुष, बाण, पाश, अंकुश, इनको धारण किये हुए—फिर कैसी है मूर्ति—श्री शिवजीकी आद्यपुरुषिका अर्थात् आत्म संबंधी उत्तम अहंकार रूपा हैं ॥७॥

सुधासिन्धोर्म्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते, मणिद्वीपेनीपो-पवनवति चिन्तामणिगृहे । शिवाकारे मञ्चे परमशिव-पर्य्यङ्कनिलयां, भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदा-नन्दलहरीम् ॥ ८ ॥

भा० टी०—हे भगवतीजी! जो कोई पुरुष चिदानंद लहरी स्वरूप आप-का ध्यान करें हैं ते धन्य हैं—कहां ध्यान करते हैं कि जहां चारों ओर अमृतका समुद्र और तिसके मध्यमें परम सुंदर माणियोंका द्वीप तिस द्वीपमें कल्प वृक्षोंकी वाटिका करिके चारों ओरसे सुगंधित—और शोभायमान और जाली झरोखाओंके द्वारा कदंबोंके उपवनकी वायु जहां शीतल मंद सुगंधित स्पर्शसुख देरही है और फूल, पत्ता, वेल, इासियें यह जहां अनेक प्रकारके चित्र विचित्र माणियोंके बनेहुए ऐसे चिंतामणि मंदिरमें जो ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदाशिव इनकरिके रचित मंचा तिसमें—और परमशिवरूप जो तोसक तिसमें विराजमान होरही हैं ॥ ८ ॥

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं, स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि । मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि जि-त्वा कुलपथं, सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे ॥ ९ ॥

भा० टी०—पूर्व क्वणत्कांची—इस पद्यकरिके स्थूल ध्यान और सुधा-सिंधो—इस पद्यकरिके परध्यान कहा—अब सूक्ष्म ध्यान वर्णन करें हैं—महीं

मूलाधारे इसपदके—तहां कहे हैं—कि हे भगवतीजी! मूलाधार चक्रमें पृथिवी को और मणिपूर जो स्वाधिष्ठान तिसमें जलको और स्वाधिष्ठान जो मणिपूर तिसमें अग्निको और हृदयगत जो अनाहत तिसमें वायुको और उसके ऊपर जो कंठ स्थित विशुद्ध चक्र तिसमें आकाशको और भ्रूमध्यगत आज्ञा चक्रमें मन जो अंतःकरण तिसको इन सबोंको भेदन करके सहस्र दल कमलमें पति जो श्रीमदाशिव परब्रह्म तिन करके एकांतमें विहार करो हो अर्थात् कुंडलिनी रूप पराशक्ति आपही हो ॥ ९ ॥

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः, प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा। अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं, स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्ड कुहरिणि ॥ १० ॥

भा॰ टी॰—यहाँ मूलाधारे-इस पद्यकरिके श्रीजीकी गति वर्णन करी अब आगमनका प्रकार और प्रपंचका जीवन प्रकार वर्णन करे हैं—सुधाधारा—इस श्लोककरिके तहां कहे हैं—कि हे भगवतीजी! भ्रूमध्यगत जो शुक्ल रक्त आपके चरण तिनके मध्यमें अंतर्गत और निष्पन्दमान अर्थात् स्रवते हुये—ऐसे जो अमृत धाराओंके झिरने—तिन करिके प्रपंच जो कुलपथ अर्थात् षट् चक्र तिन्हें सिंचन करनेवाली जो तुम—सो षडाम्नाय जो पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्द्ध, और अनुत्तर, इनके प्रकाश करके अपनी भूमिको प्राप्त होके, और सर्प तुल्य जो अपना रूप ताहि, सार्द्ध त्रिवलय करके, कुलकुंड जो मूलाधार चतुर्दल मध्य कर्णिका—जो कि छिद्रविशेष गुप्त स्थान है तिसके विषे फेर शयन करती हो—यह सायुज्य मुक्तिप्रद तुम्हारा योग श्रीनाथ कृपालभ्य ही है ॥ १० ॥

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरिति मूलप्रकृतिभिः। त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाब्जत्रिवलय, त्रिरेखाभिः सार्द्धं तव भवनकोणाः परिणताः॥ ११॥

भा० टी०—ऐसे पूर्व श्रीजीका ध्यान करिके श्रीजीका यंत्रोद्धार वर्णन करें हैं—चतुर्भिरिति—हेदेवि! श्रीशिवजीकी जो परस्पर संबद्ध इस प्रकार नव मूल प्रकृति—तिन करके रचित जो तुम्हारे मंदिरके कोणते तेतालीस संख्या होती हैं—सो किसप्रकार हैं ताहि वर्णन करें हैं—कि चार तो ऊर्द्धमुख त्रिकोण और पांच अधोमुख त्रिकोण जहां हैं और—जहां तीन भूपुर करके सहित अष्टदल और षोडशदल—और तीन वलय विराजमान हैं॥ ११॥

त्वदीयं सौन्दर्य्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं, कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः। यदालोक्यौत्सुक्यादमरललना यांति मनसा, तपोभिर्दुःप्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्॥ १२॥

भा० टी०—हे पर्वतराजपुत्री! ब्रह्माको आदि जो महाकवि ते तुम्हारे सौन्दर्य्यके वर्णन में वडा विचार करें हैं परंतु वर्णन यथायोग्य नहीं बने है—क्योंकि उपमान नहीं यामें—और जो देवता ओंकी स्त्री तुम्हारा दर्शन करके उत्कंठासे तुम्हारे सौन्दर्यको मनसे भी प्राप्त कदाचित् होंय—सोभी संभव नहीं—कैसी तुम हो कि जो तपस्या करकेभी अप्राप्य और श्रीसदाशिवजीकी सायुज्य पदभी हो—इस कारण हे भगवतीजी! आपका सौन्दर्य किसी करके कैसें वर्णन किया जाय—यह श्रीस्वामी शंकराचार्यजी अपना अंतःकरण का अभिप्राय वर्णन करें हैं॥ १२॥

नरंवर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसुजडं, तवापाङ्गालोके पतित-
मनुधावन्ति शतशः । गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्त-
सिचया, हटात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ॥ १३ ॥

भा० टी०—अत्र श्रीभगवतीजीके कृपाकटाक्ष पात्रको लोकमेंभी वि-
चित्रता दिखावें हैं—नरंवर्षी इस श्लोककरके—तहां कहे हैं—कि हेभगवतीजी!
जो पुरुष आपके कृपाकटाक्ष पात्र है वह वृद्ध है और बुरे नेत्र धारण करें है
और काम क्रीडामें नासमुझ है—सर्वथा स्त्रियोंके प्रेम होनेका कोई ढंग नहीं
है—परंतु सैकडों युवती उसे कामासक्त होय उसेही भजती हैं—और उस
पुरुषके दर्शनसे स्त्रियोंकी यह गति होय है कि खुल जांय हैं वेणी बंध जिनके
और चोटीन के परंदा पुष्प जिनके—और कंचुकीन की तनी फुंदना बंद
जिनके—और टूट जांय हैं क्षुद्रघंटिका अर्थात् कटिभूषण जिनके—और
दुकूल जो है अधोवस्त्र तथा उतरी हुई इन का स्मरण कहां जब देहकी
भी सुधनहीं ॥ १३ ॥

क्षितौ षट्पञ्चाशद्विसमधिकपञ्चाशदुदके, हुताशे द्वाष-
ष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले । दिवि द्विः षट्त्रिंशन्मनसि
च चतुःषष्टिरिति ये, मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुज-
युगम् ॥ १४ ॥

भा०टी०—हे मातः! यह जो षट्चक्रमें आपकी किरण रूप आपके आ-
वरण देवता तिन सबके ऊपर आपके चरण कमल विराजमान हैं—तिन किरण
रूप आपके आवरण देवतानको वर्णन करें हैं कि मूलाधार चक्रमें पार्थिव
अर्थात् पृथिवी संबंधी छप्पन हैं—तहां पृथ्वीको आदिपांच—और गंधको
आदिपांच—और दश इंद्रियां और अंतःकरण चतुष्टय ४ काल १ प्रकृति १

पुरुष १ और अट्ठाईसवाँ महत्तत्व—और जब शिव शक्तिं भेदकरिके इनको दुगुण किया तब छप्पन हुए—तैसेंही मणिपूर चक्रमें द्वितीयमें—जल-तत्व छब्वीस द्विगुणे बावन—और साधिष्ठान तृतीय चक्रमें तैजस तत्व इकत्तीसके द्विगुण बासठ—तैसेंही अनाहत चतुर्थ चक्रमें वायु तत्व सत्ताईसके दुगुने चौवन—और विशुद्ध पांचवें चक्रमें आकाश तत्व छत्तीस ताके द्विगुने बहत्तर—तैसेंही आज्ञा चक्र छठेमें मानस तत्व बत्तीस ताके दुगुने चौंसट—ऐसेंही सब छओं चक्रोंमें श्रीजीके किरण रूप प्रकाशमान् यह सब आवरण देवताओंके ३६० विराजमान हैं— और छठे चक्रके ऊपर श्रीचरण है—सो सायुज्य मुक्तिप्रदहै—और सब आवरण देवताओंके नाम विस्तार पूर्वक भयसे नहीं लिखे सो तंत्रोंसे जाननायोग्य है ॥ १४ ॥

शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां, वरत्रास-त्राणस्फटिकघुटिकापुस्तककराम् । सकृन्नत्वा न त्वां कथमिव सतां संनिदधते, मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितयः ॥ १५ ॥

भा० टी०—अब श्रीसरस्वतीजी का सात्विक ध्यान वर्णन करें हैं—शरज्ज्योत्स्ना—इस पद्यकरके तहां कहते हैं—कि हे मातः ! आपके चरण कमलको एकवार भी नमस्कार करे विना सत्पुरुषोंको ऐसी वाणी कैसे प्राप्त होय—और जो वाणी मधु दुग्ध दाख इनकी मिठास सेभी अधिक मिठास धारणकरै है—कैसी तुम हौ कि शरदऋतुका जो पूर्ण चंद्र तिसकी समान कांति धारण करो हौ—और जटा जूट मुकुट विषें चन्द्रमा विराजमान—और वर मुद्रा तथा अभय मुद्रा और स्फटिक माला तथा पुस्तक इन्हें धारण किये हौ ॥ १५ ॥

कवीन्द्राणां चेतःकमलवनबालातपरुचिं, भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्। विरिञ्चिप्रेयस्या-स्तरलतरशृङ्गारलहरी, गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी ॥ १६ ॥

भा० टी०—अत्र श्रीसरस्वतीजीका राजस ध्यान और उसका फल वर्णन करें हैं–तहां कहे हैं कि हे अंबे! जो कोई एक पुरुष आपको अरुण मूर्ति ध्यान करें हैं ते पुरुष अपनी वाणी विलास करके सत्पुरुषोंको परम प्रसन्न करें हैं जोकि वाणी विलास श्रीसरस्वतीजीकी परम सुन्दर शृंगार लहरीकी समान है–सो तुम कैसी हो कि कवीन्द्र जो ब्रह्मादिदेव तिनके जो चित्त सोई हुए कमलोंके वन–तिनके प्रफुल्लित करनेको अरुणोदय अर्थात् सूर्यके समान हो ॥ १३ ॥

सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि, र्वशि-न्याद्याभिस्त्वां सह जननि संचिन्तयति यः। स कर्त्ता काव्यानां भवति वचसां भङ्गिसुभगै, र्वचोभिर्वाग्देवी-वदनकमलामोदमधुरैः ॥ १७ ॥

भा० टी०—अत्र श्रीसरस्वतीजीके ध्यान विशेष करनेमें फल अधिक वर्णन करें हैं–सवित्री–इस पद्य करके तहां कहे हैं कि हे जननी! जो पुरुष लोकके शब्द ज्ञानमात्रकी प्रसन्नकरनेवाली और चंद्रकांति माणिके समान जिनकी कांति है ऐसी जो निवास करनेवाली शक्तिको आदि अष्ट शक्ति तिन करके सहित आपका चिंतवन करें हैं–सो पुरुष अपनी वाणी करके परम सुंदर काव्यका कर्त्ता होयहै–और उसकी वाणी श्रीस-रस्वतीजीके मुखारविन्दकी सुगंध समान परम मधुर और नाना प्रकारकी शब्द रचनामें परम प्रवीण होती है ॥ १७ ॥

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीसरणिभि, र्दिवं सर्व्वा-
मुर्वीमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः । भवन्त्यस्य त्रस्य-
द्वनहरिणशालीननयनाः, सहोर्वश्या वश्याः कतिकति
न गीर्वाणगणिकाः ॥ १८ ॥

भा० टी०—अव फिरभी ध्यानके प्रकार विशेष करके सिद्धी विशेष वर्णन करें हैं–तहां कहते हैं कि हे जननी ! जो पुरुष आपके शरीरकी छाया करके संपूर्ण आकाश और पृथ्वी इनको अरुणतामें पूर्ण निमग्न स्मरण करें हैं–जो आपको शरीर उदय कालके सूर्यकी कान्तिको धारण करे है–इस पुरुषको उर्वशी करके सहित कितनीही देवताओंकी स्त्री वश नहीं होती अर्थात् स्त्रीमात्र सब इस ध्यानके प्रतापसे उसके वश होती हैं–वे कैसी स्त्री हैं कि भय करके चकित नेत्र हैं जिनके–ऐसे जो वनके हरिण तिनके समान शोभायमान हैं नेत्र जिनके ॥ १८ ॥

मुखं विन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो, हरार्द्धं
ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् । स सद्यः संक्षोभं
नयति वनिता इत्यतिलघु, त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति
रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥ १९ ॥

भा० टी०—अब फल विधान पूर्वक कामकला ध्यान वर्णन करें हैं–मुखं विन्दुं–इस पद्यकरके तहां कहे हैं कि हे हरमहिषि–जो पुरुष आपकी मन्मथ कला जो बालाजी का तृतीय बीज हरार्द्ध ध्यान करें हैं अर्थात् श्री बालाजीके तृतीय बीजमें पूर्व हकार लगायके ध्यान करें हैं–तहां ध्यान प्रकार वर्णन करें हैं–कि जिस बीजके नीचे जो विन्दु है अनुस्वार तिसे अपने मुखमें मानना–अर्थात् मुखमें ध्यावे–और विन्दुके परे जो विसर्ग तिन्हें

अपने स्तनोंमें मानें अर्थात् स्तनोंमें ध्यावे—सो पुरुष शीघ्रही स्त्रियोंको मोहके वशकरे यह तो थोड़ी बात है नहीं, सूर्य चंद्र जिसके स्तन ऐसी त्रिलोकीको वशकरके चाहें तो भ्रममें करदें ॥ १९ ॥

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरम्बामृतरसं, हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः । स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिपइव, ज्वरप्लुष्टं दृष्ट्या सुखयति सुधासारसितया॥२०॥

भा० टी०—अत्र फलविधान पूर्वक श्रीजीका अन्यभी ध्यान वर्णन करें हैं—तहां कहे हैं कि हेमातः ! जो पुरुष आपको ऐसी मूर्ति करके ध्यान करे है सो पुरुष श्रीगरुडजीकी समान मनुष्योंको सर्प विषका नाश करदेय है—और ज्वर करके दग्ध शरीर जनोंको अपनी अमृत दृष्टिकरके सुखी कर देयहै—सो वह कैसी आपकी मूर्ति है कि जिसके अंगोंसे उदय होती जो तेजोंकी किरणें सोई हुआ अमृतरस ताहि वरषती हुई जो हैं और चंद्रकांति मणिकी शोभाकी तिरस्कार करै है अर्थात् परमशुभ्र प्रकाशमान् है ॥ २० ॥

तडिल्लेखा तन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं, निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम् । महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा, महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ॥ २१ ॥

भा० टी०—अत्र श्रीजीको और भी सूक्ष्म ध्यान वर्णन करें हैं—तडिल्लेखा—इस पद्य करके तहां कहें हैं कि—हेजननी! महात्मा जे सनकादि ते सहस्रदलकमलमें अपने शुद्ध मन करके अर्थात् जिस मनसे काम क्रोध आदि दूर होगये तिस मन करके आपकी जो कला तिसे दर्शन करनेपर आनंदको धारण करें हैं सो कैसी है आपकी कला, जो कि बिजलीके कौंधेके समान

सूक्ष्म है—और सूर्य चंद्र अग्नि यह तीनो जिसमें एक एक बिंदुकरके प्रकाशित हैं—और छेद जो मूलाधार का आदि चक्र तिस सबके ऊपर वह आपकी कला विराजमान है ॥ २१ ॥

भवानि त्वद्दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा, मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानित्वमिति यः। तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं, मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुट नीराजितपदाम् ॥ २२ ॥

भा० टी०—और अब श्रीभगवतीजीसे प्रार्थना मात्र फलकी लाभ और शीघ्रही प्रार्थनासेभी अधिक लाभ वर्णन करें हैं—तहां कहें हैं कि हे भवानी! भव जो श्रीसदाशिवजी तिनकी रानी जो पुरुष तुम्हारी स्तुतिको करत संते तुमसें ऐसे प्रार्थना करें कि मैं आपका दासहूं मुझे आप करुणापूर्वक देखो तो हेभगवती! तुम तिसही कालमें उस पुरुषको अपनी सायुज्य पदवी अर्थात् अपनसे ऐक्यताभाव देती हो—तहां का हेतु कहें हैं—कि आप भवानीजी हो भव जो जन्म तिसकी जिवानेवाली हो अर्थात् जन्मकी साफल्य देनेवाली हो—आपकी कैसी सायुज्य पदवी है कि विष्णु ब्रह्मा इन्द्र इनके सीसों का मुकुट करके नीराजन करी जाय है—यह बात है कि श्रीजीके विराजनेके सिंहासनके अग्रभाग जो चरण चौकी सो ऐसे माणिकी है कि जब कोई भगवतीजीके चरण कमलमें नमस्कार करे और फिर शिरको ऊंचाकरे है तिस समयमें उस चरण चौकीमें भीतर मुकुटकी छायासे आरती जानी जाय है ॥ २२ ॥

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा, शरीरार्द्धं शंभोरपरमपि शङ्के हृतमभूत्। तथा हि त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं, कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमुकुटम् ॥ २३ ॥

भा० टी०—अब श्रीदेवी और देवको पृथक् पृथक् प्रकाशमान होत संतें भी परस्पर प्रीति स्नेहाधिक्य से ऐक्यता वर्णन करें हैं–तहां कहें हैं कि हेदेवी ! जिस समयमें श्रीशिवजी का बांया अंग अर्द्धशरीर तुमने ग्रहण किया तिस समयमें शिवजी जो दक्षिण भाग अर्द्ध है सोभी तुमने हरलिया ऐसा निश्चय होता है–क्योंकि अरुण जो तुम्हारा शरीर तिसकी छायाकरके संपूर्णही अरुणहै–और चिन्हहैं सोभी तुम्हारे रूपमें हैं–और शरीरके एक होनेसें कुचों करके झुकेहुए संपूर्णशरीर में हैं सोभी तुम्हाराही रूप है–और चंद्रकला जिसमें देदीप्यमान ऐसा जो शिरोभूषण श्रीमुकुट सोभी तुम्हाराही भूषण प्रसिद्धहै–इसहेतु श्रीभगवतीजी निश्चय है कि शिवजीके अर्द्धशरीरसे तुम्हारा मन तृप्त नहीं हुआ, तब अपनी अरुण प्रभा करके शिवजीसे एक स्वरूप धारण किया है ॥ २३ ॥

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते, तिरस्कुर्वन्नेत-
त्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति। सदा पूर्वः सर्वं तदिदमनु-
गृह्णाति च शिव, स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयो-
र्भ्रूलतिकयोः ॥ २४ ॥

भा० टी०—अब कहते हैं कि सृष्टिका रचना पालन संहार इनमें ब्रह्मा आदि तीन देवताओंको पृथक् पृथक् यद्यपि मुख्यता है जो राजाके समान श्रीभगवतीजीकोही सर्व कर्तृत्वहै यह वर्णन करें हैं–जगत्सूते–इस पद्य करके तहां कहते हैं कि–हेमातः! आपकी जो चंचल भौं हैं इनकी आज्ञाको आलंब करकेही ब्रह्मा सृष्टि करै है और तैसेंही श्रीहरि पालनकरें–और रुद्र संहार करें हैं फिर संहारके अनंतर श्रीरुद्र अपना शरीर भी लयको प्राप्त करें हैं–और जब श्रीसदाशिवजी सब जीवोंको उनके बीजरूप कर्मसहित यथावकाश अपनेमें धारण करें हैं–यहां प्रयोजन यह है कि–आपका यह भृकुटी विलासही सब प्रकारसे चतुर्दश भुवन है ॥ २४ ॥

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे, भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता । तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे, स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमुकुटाः ॥ २५ ॥

भा० टी०—अब यह वर्णन करें हैं कि—ब्रह्मादिक तीनों देवता एक एक गुणके राजाहैं—और श्रीभगवतीजी उन तीनों गुणोंका आश्रय हैं—इस कारण श्रीभगवतीजी सबकी आत्मा हैं—सोई कहें हैं कि—त्रयाणां—इस श्लोक करके तहां कहेंहैं कि—हे शिवे! हे कल्याण करने वाली त्रिगुण जनित जो तीनों देव तिनकी पूजा तुह्मारे चरण पूजा करनेसे निश्चय होजाय है—क्योंकि तुह्मारे चरण कमलके विराजनेका जो मणिपीठ तिसमें तीनों देव निरंतर स्थित हैं—वे कौन प्रकारसे स्थित हैं—सो कहते हैं कि अपने जो हाथ तिन्हें कमलाकार करके सीसमें मुकुटकी भांति लगायके तुह्मारे चरण पीठंको अपने सीसमें धारण करें हैं ॥ २५ ॥

विरिंचिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं, विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम् । वितन्द्रा माहेन्द्री विततिरपि संमीलति दृशां, महासंहारेऽस्मिन् विलसति सति त्वत्पतिरसौ ॥ २६ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीका सौभाग्यभी अचल है सो वर्णन करें हैं—विरिंचिः इस पद्यकरके तहां कहें हैं कि—हे सतीजी! हे पतिव्रते! यह जो महासंहार तिसमें तुह्मारे पति जो श्रीपरम शिव सोही एक विलास करें हैं अर्थात् वोही एक निवास करें हैं—और कोईभी नहीं बचै है—जिस संहारमें ब्रह्माजी मरणको प्राप्त होते हैं—और विष्णु—यम कुबेर येभी सब मरणको प्राप्त होय हैं—और इन्द्रकी जो हजार नेत्रोंकी पंक्ति बहुत कालसे निद्रा रहित

सोभी जिसकालमें एक संग मिचकें महा निद्रामें प्राप्त होजाय अर्थात् इंद्रभी मृत्युको प्राप्त होजाय है—और यह जो तुह्मारे पति श्रीपरमशिवजी विलास कोही प्राप्त रहते हैं—यह आपकाही प्रभाव है ॥ २६ ॥

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं, गतिः प्रादक्षिण्यं क्रमणमदनाद्याहुतिविधिः । प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा, सपर्य्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥ २७ ॥

भा० टी०—अब ऐसें स्तुति करिकें क्षणमात्रकी श्रीजीके पूजन वियोगको न सहितें हुए श्रीस्वामीजी यह प्रार्थना करें हैं—जपोजल्पः—इस पद्यकरिकें तहां कहते हैं कि—हेभगवतीजी! जो कुछ हम मुखसे वचन मात्र कहें सो सब जप होजाओ—और जो कुछ हम हाथोंसे रचना करें सोभी सब आपके अर्थ मुद्रा और हमारा चलना फिरना आपकी परिक्रमा और हमारे भोजन हैं सो तुम्हारे अर्थ हवन और हमारा स्वप्न तुम्हारे अर्थ नमस्कार और हमारी सुषुप्ति तुम्हारे अर्थ समाधि ऐसें हेभगवतीजी! हमारे इन्द्रियोंके जितने कर्म हैं सो सब तुम्हारी पूजाके पर्य्याय अर्थात् पूजाके तुल्य अर्थके देनेवाले होंय और जो यह प्रार्थना श्रीस्वामीजी करें है सो पूर्ण होय ॥२७॥

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशानुसदृशी-ममन्दं सौन्दर्य्यप्रकरमकरन्दं विकिरति । तवास्मिन् मन्दारस्तबकसुभगे यातु चरणे, निमज्जन्मज्जीवः करणचरणैः षट्चरणताम् ॥ २८ ॥

भा० टी०—अब पूर्वोक्त अभिलापको फिरभी श्रीजीसे प्रार्थना करें हैं—तहां कहें हैं कि—हे मातः! तुम्हारे जो चरण सोई हुए कल्पवृक्षोंके पुष्पोंका

गुच्छा तिस विषें हमारा जीव अपने इन्द्रियरूप चरणों करिकें आरक्त हुआ-भया भ्रमर के भावको प्राप्त रह्यो—यहां पांच ज्ञानेन्द्रियां छठा मन छहों चरण जानिये—कैसे आपके चरण हैं सो गुच्छा हैं कि सौन्दर्यका जो लावण्य समूह तिसकी मिठासका अत्यन्त विस्तार करें हैं—और दीनोंके अर्थ उनकी आज्ञा तुल्य संपत्तियोंको देते हैं ॥ २८ ॥

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरिणीं, विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः । करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना, न शम्भोस्तन्मूलं जननि तव ताटङ्कमहिमा ॥ २९ ॥

भा० टी०—अब फिरभी श्रीजीकी सौभाग्य महिमा वर्णन करें हैं—सुधामपि—इस पद्य करिकें—तहां कहें हैं कि—हेभगवतीजी! ब्रह्मा और इन्द्र, इनको आदि जो संपूर्ण देव ते अमृतको पान करिकेंभी मृत्युको प्राप्त होजाँय—जो अमृत जीवमात्रके भयसे और बुढापेसे और मृत्युसे छुडादेयहै—और बडे भयका देनेवाला ऐसा समुद्र मथन विषें उद्भव अर्थात् उत्पन्नभया हला-हल विष तिसको पान करें परभी श्रीमहादेवजीको काल कलना नहीं अर्थात् मृत्यु नहीं—सो हेजननी ! यह आपके ताटंक जो कर्णालंकार सौभाग्य भूषण तिसकी महिमा है ॥ २९ ॥

किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभभिदः, कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जंभारिमुकुटम् । प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमभि-यातस्य भवनं, भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ३०

भा० टी०—अब श्रीजीकी तथा शिवजीकी राजक्रीडा सो सेवकजनोंके सन्मुख वर्णन करें हैं—तहां कहें हैं कि—हेभगवतीजी! श्रीशिवजीके हेतु जो

आपका आदरके अर्थ अभ्युत्थान है–तिस समयमें जो तुम्हारी सखियोंकी उक्ति अर्थात् ब्रह्म आदिसे कथन सो परम शोभायमान होय है–सो किस प्रकार करके कैसी तुम्हारी सखियोंकी उक्ति है कि–हेब्रह्मा! तेरा जो श्री चरणोंमें मुकुट तादि अग्रभागमें वरदें और विष्णुका मुकुट कठोर है–तेरें नलगें इसेभी हटादेय और इन्द्रको मुकुटभी दूर करिकें–फिर श्रीशिवजी किसप्रकारके हैं कि जिस समयमें यह ब्रह्मादिक श्रीभगवतीजीके चरण कमलमें नमस्कार कररहे हैं तिसही सनयमें–वरमें आय प्राप्तभये हैं॥३०॥

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमभिसंधाय भुवनं, स्थितस्त-
त्तत्सिद्धिप्रसभपरतन्त्रैः पशुपतिः । पुनस्त्वन्निर्बन्धा-
दखिलपुरुषार्थैकघटनात्स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलम-
वातीतरदिदम् ॥ ३१ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीका सर्व स्वरूप ताय इस हेतु श्रीभगवतीजी स्वतंत्र हैं सो वर्णन करें हैं–चतुःषष्ट्याः इसश्लोक करकें तहां कहें हैं–कि हेभगवतीजी! पशुपति जो महादेव सो चौंसठ तंत्रों करिकें चौदह भुवनकी सिद्धी विधान करते हुए–और उन तंत्रोंमें कहीं जो सिद्धी तिसके पूर्ण करनेमें विधिके आधीन स्थित हैं–और हेभगवतीजी! तुम निर्बंधनसें ही धर्म अर्थ काम मोक्ष यह चारों पुरुपार्थ देती हौ–बात यह है कि श्रीशिवजी तौ अपने तंत्रोंकी कही हुई विधिकी आपेक्षा करिकें यथाविधान फल देते हैं–और तुम दूसरेकी विना आपेक्षा फलदेती हौ–क्योंकि तुमसे और दूसरा कौन है जिसकी आपेक्षा करो सोभी कहते हैं कि तुम्हारा तंत्र पृथिवीमें स्वतंत्रके अवतारको धारण करें है ॥ ३१ ॥

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः स्मरो
हंसः शक्रस्तदनु च परा मारहरयः । अमी हृल्लेखाभि-

स्तिसृभिरवसानेषु घटिता भजंते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ॥ ३२ ॥

भा०टी०—अब श्रीजीका मंत्रोद्धार वर्णन करें हैं–शिवः शक्ति–इसश्लो-ककरिकें तहां कहैंहें, कि हेभगवतीजी ! यह जो वर्ण हैं सो तुम्हारे नामके अंग हैं–नामही कहावें हैं मंत्रराज तिसके अंग हैं अर्थात् इन वर्णोंके इकट्ठे होनेसे तुम्हारा नाम कहावें सो आपका मंत्रराज होय है–सो वह कौनसे वर्ण हैं कि–शिव, शक्ति, काम, क्षिति, अर्थात् हंसकल और इसके दूसरे भागमें रवि शीतकिरण स्मर हंस शक्र अर्थात् हंसकल और तीसरे भागमें परा मार हरि अर्थात् सकल सो यह कैसें होय कि इन तीनों वर्ण समूहोंके अंतमें हृल्लेखा होय–उसे कहें हैं, भुवनेश्वरी बीज होय तो आपका मंत्रराज होय है ॥ ३२ ॥

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनोर्निधायैके नित्ये निरवधि महाभोगरसिकाः । जपन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः, शिवाग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराहुतिशतैः ॥ ३३ ॥

भा० टी०—अब कामराज विद्या वर्णन करें हैं–तहां कहें हैं कि हे नित्ये ! जो श्रेष्ठ पुरुष इसलोक और पर लोकके सुखोंको दुःख रहित इच्छा करें हैं अर्थात् सुखका होकें जाता रहना और दूसरेकी दृष्टि करके थोडा होना और जो है उससे अधिककी चाहहोनी–इन दुखोंसे जुदा सुख चाहते हैं–और तुह्मारे चरण कमलमें इन्द्रियोंकी वृत्ति लगायकें तुम जो पूर्वोक्त मंत्रराज तिन्हें जपें हैं–तिन पुरुषोंका जो इन्द्रियविलास सो तुह्मारीही प्रीतिके अर्थ होय है–पूर्वोक्त मंत्रराजरूप जो तुम तिन्हें कैसें जपें हैं कि–स्मर योनि लक्ष्मी अर्थात् क, ए, ई, इन तीनोंको पूर्व जो मंत्रके भाग तीन तिनकी आदिमें क्रमसे धारण करिलेंय हैं ॥ ३३ ॥

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं, तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम् । अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया, स्थितः संबन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः ॥ ३४ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीका और शिवजीका अभेद वर्णन करें हैं—शरीरंत्वंशंभो—इस पद्य करिके तहां कहें हैं कि—हे भगवतीजी ! शंभु जो शिवजी तिनका शरीर तुम हो जिस तुम्हारे शरीरके सूर्य चंद्रमा स्तन विराजमान हैं—इस कारणसे हे देवी ! अनघ कहें निष्पाप जो श्रीशिवजीकी आत्मा सो तुम्हारी आत्मा हम मानें हैं—और फिर तुम्हारे दोनोंके अभेद होनेमें समरस जो परानंद और पर तुम दोनोंका एक स्वरूप संबंध है सो शेष और शेषी यह गुण गुणी भाव करिके तुल्य ही स्थित है—बात यह है कि सबसे पिछला जो बाकी रहे सो शेष कहा जाय है—तो शेष बातभी वही कही जायगी—क्यों कि इससे परे और नहीं जो शेष बात कही जाय—और है तो वही शेष है—वही शेषी है ॥ ३४ ॥

मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि, त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम् । त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा, चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे ॥ ३५ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजी का जगत्भी एक स्वरूप है—और श्रीजीका स्वरूप ज्ञानके अनंतर यह जगत्भी चिदानंद स्वरूप प्रकाशमान होय है—जैसें कि दुग्धका दधिसों वर्णन करें हैं—मनस्त्वं—इस पद्यकरके तहां कहें हैं—कि हे शिवयुवति ! चिदानंदाकार जो तुम्हारा स्वरूप तिसे अपनी

लील करिकें विश्वरूप धारण तुमहीं करो हो—क्योंकि जैसें दुग्धका दधि हो जाय है तैसेंही यह विश्वभी तुम्हारा स्वरूप ज्ञान होनेसें चिदानंद रूप प्रकाशमान है—सोई विश्वरूप तुम्हारा वर्णन करें हैं—कि—हेभगवतीजी ! मन अर्थात् अंतःकरण आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी यह तुमही हो—तुम्हारे स्वरूपको दृष्टि करिकें कोई दूसरा नहीं है ॥ ३५ ॥

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं, परं शंभुं वंदे परिमिलितपार्श्वं परचिता। यमाराध्यन्भक्त्या रविशशि-शुचीनामविषये, निरालोके लोको निवसति हि भा-लोकभवने ॥ ३६ ॥

भा० टी०—अब देवी और देव जो चक्रोंमें स्थित हैं तिनकी स्तुति कई-एक श्लोकों करिकें वर्णन करें हैं—तवाज्ञाचक्रस्थं इत्यादिक श्लोकों करिकें तहां कहें हैं—कि हे भगवतीजी ! तुम्हारा जो आज्ञाचक्र कहे भ्रूमध्य चक्र तिसमें स्थित जो पर शंभु तिन्हें हम वंदना करें हैं—जो कि शंभु कोटि सूर्य चंद्रमाके प्रकाशको धारण करें हैं—और जिनके वाम भागमें चैतन्यरूपा शक्ति विराजमानहै—और फिर कैसे हैं परशंभु कि साधक पुरुष भक्ति करिकें उनके ध्यान करनेसे किरण रूप लोकमें निश्चय वास करे है—सो कैसाहै वह किरणों का लोक कि जिस लोकको सूर्य चंद्र और अग्नि यह प्रकाश नहीं कर-सकै हैं—क्योंकि वह निरालोकहै—अर्थात् स्वप्रकाश है—अपनेको आपही प्रकाशै है—उसका प्रकाश करनेवाला दूसरा नहीं है ॥ ३६ ॥

विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यसनिनीम् । ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणिर्विधूतान्तर्ध्वान्ता वि-लसति चकोरीव जगती ॥ ३७ ॥

भा० टी०—अब और चक्रमें स्थित जो देवी तथा देव तिनको दूसरा नाम करिकें स्तुति करें हैं—तहां कहते हैं कि हे महेशिनी ! तुम्हारा जो विशुद्ध नाम चक्र अर्थात् तुम जिसमें विराजमान हो—ऐसा कंठस्थ षोडशदल चक्र तिसमें स्थित जो व्योमजनक अर्थात् आकाशके उत्पन्न करनेवाले—और शुद्धस्फटिक तुल्य श्रीशिवजी तथा शिवजीके समान व्यापारवाली शुक्ल वर्णदेवी तिनको हम वंदना करें हैं—कैसी हैं देवी और देव कि जिनकी कांति चंद्रमाकी किरणों की समान है—और जिनकी कांति करिकें संपूर्ण सृष्टि अपने अंतःकरणका अंधकार दूरकरिकें चकोरी पक्षीके तुल्य विलासको प्राप्त होय हैं—बात यह है कि जैसें चकोरी पक्षी चंद्रमाकी किरणको नेत्रोंसे पान करनेवाला प्राणसे प्यारा मानिकें सुख पावे है—तैसेही यह जीवसृष्टिभी आकाशको उत्पन्न करनेवाले देवी देवके किरण रूप आकाशका अमृत पान करिकेंही प्राणोंको धारें हैं—और जो आकाशका अमृत इसकी द्वारा न पावें तो प्राणसहित निकलजांय ॥ ३७ ॥

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं भजे हंसद्वंद्वं किमपि महतां मानसचराम् । यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणतिर्यदादत्ते दोषाद्गुणममलमद्भ्यः पय इव॥३८॥

भा० टी०—अब प्रकरणसे प्राप्त जो हंसस्वरूप श्रीदेवी तथा देव जो कि अविनाशी सूर्यकी किरणोंमें मुख्य वासी हैं तिनकी स्तुतिकरें हैं—समुन्मीलत्—इस पद्यकरिकें तहां कहते हैं कि—हेजननी ! तुम्हारे जो हंसद्वंद्व तिनको हम नमस्कार करें हैं—जोकि हंसद्वंद्व उदरको प्राप्त जो ज्ञानरूप कमल वन तिसकी सुगंधका रस पीनेवाले हैं—और महात्माओंके मन रूप सरोवर का विरचने वाला है—और जिसके संभाषणसे अठारह विद्याओंका प्रकाश होता है—और जो हंसद्वंद्व दोषोंसे अर्थात् अविद्याजनित दोषोंसे अमल गुणको अर्थात् अखंडाद्वैतानंद रूपको जलसे दुग्धकी भाँति पीते हैं ॥३८॥

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं तमीडे संवर्त्तं जननि महतीं तां च समयाम्। यदालोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिले दयार्द्रा दृष्टिस्ते शिशिरमुपचारं रचयति ॥ ३९ ॥

भा० टी०—अब पूजा प्रसंगसे प्राप्त जो स्वाधिष्ठान चक्रमें स्थित देवी और देव तिनकी स्तुति करें हैं तव स्वाधिष्ठाने इस श्लोक करिकें तहां कहें हैं कि–हेमातः! तुम्हारे स्वाधिष्ठान चक्रमें अग्निको स्थापन करिकें स्थित जो संवर्त्तनाथ भैरव तिनको और श्रीसमया देवी भैरवी तिन्हें हम नमस्कार करें हैं–वह कैसे हैं श्रीसंवर्त्तनाथ भैरव–कि जो अपने तृतीय नेत्र की ज्वाला-वली करिकें विश्वके संहारकी इच्छा करें हैं–और तुम संपूर्ण लोकोंको परम शीतल उपचार रचो हो ॥ ३९ ॥

तडिद्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपंथिस्फुरणया स्फुरं नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्। तवः श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम् ॥४०॥

भा० टी०—अब पूजाके क्रमसे प्राप्त जो मणिपूर स्थित देवी तथा देव तिन्हें वर्णन करें हैं–तडिद्वंतं–इस पद्यकरिकें तहां कहे हैं कि हेमात:! मणि-पूर है स्थान जिनका ऐसे जो मेघस्वरूप श्रीशिवजी अर्थात् अमृतेश्वरानंद नाथ तिनकी हम सेवा करें हैं–जो कि अमृतानंद नाथ अंधकारके नाशकर-नेवाली विजलीके समान अमृतेश्वरी शक्ति करिकें वाम भागमें युक्त है–और नानाप्रकारके जौरलोंके आभूषण तिनकी दीप्ति करिकें इन्द्रके धनुषकी शोभाको धारण करें हैं–और सजल जो श्याम मेघ तिसकी समान हैं–और पूर्व जो स्वाधिष्ठान चक्रमें स्थित संवर्त्तनाथ तिनके नेत्र रूपी सूर्य करिकें जब तीनों लोक तप्त होंय हैं–तब अमृतकी सुंदर वर्षा करें हैं ॥ ४० ॥

तवाधारे मूले सहसमयया लास्यपरया तवात्मानं वन्दे नवरसमहाताण्डवनटम् । उभाभ्यामेताभ्यामुभयविधिमुद्दिश्य दयया सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् ॥ ४१ ॥

भा० टी०—अब पूजा क्रमसें प्राप्त जो मूलाधार स्थित देवी और देव तिन्हें वर्णन करें हैं—यहां कहें हैं कि हे जननी ! आपका निवास स्थान जो मूलाधार चक्र तिसमें स्थित जो लास्येश्वरानंद नाथ शिव तिन्हे हम नमस्कार करेंहैं—जो कि लास्येश्वर शिव-लास्यरूप जो स्त्रियोंका नृत्य विशेष तिस करिकें युक्त समया देवी सहित विराजें हैं—कैसें हैं लास्येश्वर शिवजी कि नव संख्या जो रस सो उनका स्वरूपहै—और फिर कैसे हैं कि नौप्रकारके जो ताल सो जिनके शिव शक्ति रूपसें आपसे आपही प्रकट होंय हैं—और यही लास्येश्वरानन्दनाथ लास्येश्वरी देवी तिन करिके माता पिता रूप यह जगत् उत्पन्नहै जब कि स्त्री पुरुषके रूपको धाणरण करके युक्त हुये हैं-अब कहेंहैं कि तवाज्ञाचक्रस्थं ३६ वेंश्लोक करिकें और ४१ वां श्लोक जो तवाधारे मूले यहां पर्यन्त श्रीजीका पूजन प्रकार वर्णन किया—सो इस प्रकार जानिये—कि भ्रूमध्य आज्ञा चक्र जो प्रथम तिसमें परशंभुदेवानंदनाथ—परशंभुदेवी अंबा श्री—पादुकां पूजयामि नमस्तर्पयामि नमः १ और कंठमें स्थित जो विशुद्ध नाम दूसरा चक्र तिसमें व्योमेश्वरानंद नाथ जिनकी व्योमेश्वरी नाम देवी श्री अंबा—२—और हृदयमें स्थित जो तीसरा अनाहतचक्र तिसमें हंसेश्वरानंदनाथ जिनकी हंसेश्वरी श्रीदेवी अंबा—३—और नाभिमें स्थित जो चतुर्थ स्वाधिष्ठानचक्र तिसमें संवर्त्तानंद नाथ तिनकी संवर्तेश्वरी देवी अंबाश्री—४—और लिंगमूलमें स्थित जो मणिपूर चक्र तिसमें अमृतेश्वरानंदनाथ तिनकी अमृतेश्वरी देवी अंबाश्री—५—और गुदामें स्थित जो मूलाधार चक्र

तिसमें लास्येश्वरानंद नाथ तिनकी लास्येश्वरी देवी अंबाश्री—६—पादुकां पूजयामि नमस्तर्पयामि नमः—इस क्रमसे तंत्रोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४१ ॥

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिस्सान्द्रघटितं किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्त्तयतु कः । तमीडे यच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं धनुः सौनासीरं किमिदमिति वध्नाति धिषणाम् ॥ ४२ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीका मुकुटसे आदिलेकर और चरण पर्यन्त ध्यान पूर्वक स्तुति करें हैं—तहां कहें हैं कि हे गिरिराजनंदिनी ! तुह्मारे सुवर्णके श्रीमुकुटका वर्णन कौन कर सके अर्थात् किसीकीभी सामर्थ्य नहीं—तथापि जैसी मेरी बुद्धी तैसी मैं नमस्कार कर कहताहूं—कैसा आपका मुकुट है कि रत्नोंके स्वरूपको धारण करें जो द्वादश सूर्य तिन करिकें विश्वकर्मीने भले प्रकारसे रचाहै—और जिस मुकुटकी छायाके संबंधसे श्रीचूडाचंद्रमें इन्द्रके धनुपकी बुद्धी होय है—बात यह है कि पहिलें वो श्रीजीका चूडा चंद्र तिरछा अर्ध होनेसे आपही इन्द्र धनुपका आकार है और जब द्वादश सूर्यकी समूहीभूत कांतीको प्राप्त हुआ—तब नाना प्रकारके वर्णोंको धारण करनेंसे और श्याम पीत स्वेत—इनको प्रधानता करिके पंक्तिबद्ध धारण करनेंसे—और ऊंचे स्थानमें स्थित होनेसे और जीवमात्रके अंतःकरण विषें प्रकाश रूप वर्षा विधान करनेंसे आकार रूप देश गुण—जिसके चार हेतु विद्यमान हैं सो श्रीचूडाचंद्र इन धनुपकी बुद्धिको निश्चय धारण करे है ॥ ४२ ॥

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं घनस्निग्धं श्लक्ष्णं चिकुरनिकुरंबं तव शिवे । यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो वसन्त्यस्मिन्मन्ये बलमथनवाटीविटपिनाम् ॥४३॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीके केशकलाप वर्णन करें हैं तहां कहें हैं कि हेशिवे! आपका जो केशकलाप अर्थात् केशोंका समूह सो हमारे अंधकार रूप जो अज्ञान तिसे दूर करो—जिस केश समूहकी उपमा खिले हुए श्याम-कमलोंके वनकी दीजिये है—और परम सघन सचिक्कन सहित और परम सुंदर जिनका स्पर्श—और हे भगवतीजी! हम यह निश्चय जानें हैं कि इन्द्र-के नंदन बन वाटिकाके कल्पवृक्ष आदि वृक्षोंके पुष्प जिन केशोंकी स्वा-भाविक सुगंध ग्रहण करनेको इनमें आय आय वासकरें हैं—इस श्लोकमें यह विचार करें हैं कि जिन केशोंको प्रफुल्लित कमल वनकी जो उपमा दीनी सो परम श्याम श्रीकेश सजातीय होनेसे अंतःकरणका जो अज्ञानरूप अंधकार तिसे कैसे नाश करें—तहां कहते हैं कि अंधकार कुछ श्याम वर्ण नहीं है—किन्तु दीखना नहीं ना यही अंधकार है—और केश तो श्रीजीके श्याम हैं सो दृष्टि पडते हैं तो अंधकारसे विजातीय होनेसे अंतःकरणके अज्ञान अन्धकारको निश्चय नाश करेंगे—सो श्रीकेशोंकी यह विचित्रता है कि श्याम भी श्रीकेश श्याम अंधकार का नाश करें हैं ॥ ४३ ॥

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिरत्विषां वृन्दैर्वन्दी-
कृतमिव नवीनार्ककिरणम् । तनोतु क्षेमं नस्तव वदन-
सौन्दर्य्यलहरीपरीवाहस्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणिः ॥४४॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीके सौभाग्य वंदन सहित जो सीमंत तिसे स्तुति करें हैं—वहन्ती सिन्दूरं—इस पद्यकरिकें—तहां कहते हैं कि हे भगवतीजी! आपकी जो सीमंतसरणि अर्थात् माँग सो हमारे अर्थ कल्याण करो—जो सीमंत सरणि सिंदूरको इस प्रकार धारण करे हैं—कि कबरी जो श्याम प्रभा तिस करिकें और दोनों पटियोंकी जो श्याम प्रभा तिन्हों करिकें,

मानो सब ओरसे घेरके उदय होते सूर्यकी किरणोंको मध्यमें बंधन किया है—सो कैसी है सीमंतसरणि अद्भुत—कि हे मातः! आपके मुखका जो लावण्य सोई हुआ सुंदरजल करके पूर्ण जलकुंड तिससे निःशेष जल निकालनेकी प्रणालीकी भांति शोभायमान विराजे है ॥ ४४ ॥

अरालैः स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकैः परीतं ते वक्त्रं परिहसति पङ्केरुहरुचिम्। दरस्मेरे यस्मिन् दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरमथनचक्षुर्म्मधुलिहः ॥ ४५ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीके श्रीमुखकी स्तुति वर्णन करे हैं—अरालैः—इस पद्यकरिके तहां कहे हैं—कि हेमातः! आपका जो श्रीमुख सो पंकरुहोंकी अर्थात् कमलोंकी कांतिको हास्यकरे है—जो कि तुम्हारा श्रीमुख स्वभावही करिके टेढी और भ्रमरोंके बच्चोंकी श्याम शोभाको धारण किये ऐसी अलकोंकरिके परिवृत विराजे है—और जिस श्रीमुखमें सुंदर हास्य विलसित है—और दंतावलीकी जो शोभा सोई कमलोंके सर समान जिसमें विराजमान है—और परम सुगंधी कोधारण करे है—और जिस मुखकमलके विषे श्रीमहादेवजीके भी नेत्ररूपी भ्रमर मतवाले होजाय है—इस कारण कौनकी सामर्थ्य है जो श्रीमहादेवजीके भी मतवाले करनेवाले श्रीमुखारविंदको यथावत् वर्णन करिसके ॥ ४५ ॥

ललाटं लावण्यद्युति विमलमाभाति तव यत् द्वितीयं तन्मन्ये कुमुटशशिखंडस्य शकलम्। विपर्य्यासं न्यासादुभयमपि संभूय च मिथः सुधालेपस्फूर्त्तिः परिणमति राकाहिमकरः ॥ ४६ ॥

भा० टी०—अब श्रीमहाभगवतीजीके ललाट देशकी स्तुति करें हैं कि हेभगवतीजी ! आपका जो लावण्य कारिकें परम सुंदर ललाट अर्थात् मस्तक देश तिसको श्रीमुकुटके अर्द्ध चंद्रका वा दूसरा अर्द्ध भाग मानें हैं—सो कहतेहैं कि हेदेवी! श्रीमुकुट तो चंद्र भाग उर्द्ध मुख—और ललाट शोभा रूप चंद्र अधोमुख जब वह दोनों परस्पर यथावत् मुख मिलें तो अमृतके योगसे संधिभी न रहै—तब पूर्णिमाका चंद्र होय है—ऐसी उत्प्रेक्षा श्रीस्वामीजी करते हैं ॥ ४६ ॥

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद्भुवनभयभङ्गव्यसनिनि त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणे । धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढांतरमुमे ॥ ४७ ॥

भा० टी०—अब श्रीभवानीजीकी भ्रुकुटीकी स्तुति करें हैं—भ्रुवौ भुग्ने—इस श्लोककरिकें तहां कहते हैं—कि हे भुवनभयभंगव्यसनिनि—हे संसारके भय नाशकरनेवाली! तुम्हारी जो कुछ एक टेढी भ्रुकुटी सो चिल्ला चढाके हाथमें ग्रहण करी ऐसी कामदेवकी धनुष हम मानें हैं—जिस धनुष में भ्रमरोंकी पंक्ति समान तुम्हारे नेत्रोंका चिल्ला चढा है—और कामदेव अपने बायें हाथ में ग्रहण किये हैं—इसहीसे भ्रुकुटी रूप धनुषके मध्यमें उसकी मुट्ठीका अंतरा ये है—और नेत्ररूप चिल्लेके मध्यमें कामदेवके अंगूठेका अंतरा ये है ॥ ४७ ॥

अहः सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकमयम् । तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः समाधत्ते संध्यां दिवसनिशयोरंतरचरीम् ४८॥

भा० टी०—अब श्रीजीके नेत्र त्रयकी स्तुति करें हैं—तहां कहें हैं—कि हे भगवतीजी ! आपका जो दक्षिण नयन सो स्वरूप सूर्यरूप है—इस हेतु दिवसको उत्पन्न करे है—और वाम नेत्र चंद्र रूप है तिससे रात्रिको उत्पन्न करे है—और रात्रि दिवसके मध्यमें प्राप्त ऐसी जो संध्या तिसे भ्रुकुटीके मध्यमें विराजमान है सो थोडे विकसित पीतरंग कमलोंकी शोभाको धारण किये है—ऐसा तृतीय नेत्र उत्पन्न करे है ॥ ४८ ॥

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुरा भोगवतिका । अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरण योग्या विजयते ॥ ४९ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी दृष्टिकी स्तुति करें हैं—तहां कहते हैं कि हे श्रीदेवि! आपकी जो दृष्टि है सो जिन जिन नगरोंको जीतती भई है तिन तिन नगरोंके नाम वर्णन किये जाते हैं—क्योंकि जो जिसको जीतलेय है—वह हारे हुए नगरकी अच्छी अच्छी वस्तुओंको छीन लेय है—इस हेतुसे आपकी दृष्टि सर्वोत्कर्ष करिकें वर्त्तमान है—तहां पहले तो विशाला नाम नगरी को विशाल गुण होनेसे दृष्टिने जीता—इस हेतुसे विशाला नाम है—और कल्याण गुण होनेसे कल्याण नाम जो गंधर्व नगर तिसके जीतनेसे कल्याणी नाम है—और कुवलय जो भूमंडल तिसकरिकें नहीं जीती जाय—ऐसी जो श्रीरामचंद्रकी अयोध्यानाम नगरी तिसे जीतनेसे आपकी दृष्टि अयोध्या नाम है—क्योंकि कुवलय जो कमल तिन करिकें श्रीजीकी दृष्टिभी नहीं जीती जाय—वह कृपारूपी प्रवाहकी आधारा है—इस हेतु धारानाम नगरी को जय करे है—और मथुरानाम श्रीकृष्ण महाराजकी मथुरा नगरी है वह

परम मधुर होनेसे दृष्टिने जीता है—इस कारणसे मधुरा है—और पातालमें जो भोगवती नगरी नागोंकी प्रसिद्ध है—तिसे श्रीपरमाशिवजीके मुखावलोकन रूपभोग करनेसे सो भोगवती नगरीको जीता है—तिससे भोगवती नाम हुआ—और अवंतिका उज्जयन नगरी प्रसिद्ध है—तिसे भी जीता है—इस हेतु दृष्टिभी अवंतिका है—क्योंकि भक्तजनोंको यह दृष्टिभी अवंति करै है—अर्थात् रक्षा करै है ॥ ४९ ॥

कवीनां संदर्भस्तवकमकरन्दैकभरितं कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलम्। अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नवरसास्वादतरलावसूयासंसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणम् ॥ ५० ॥

भा० टी०—अब और भी श्रीभगवतीजीके तृतीय नेत्रकी स्तुति वर्णन करें हैं—कि हेमातः! आपका जो कटाक्षोंका व्याक्षेप अर्थात् श्रीनेत्रोंकी फुरना सोई हुए बालभ्रमर तिनको तुम्हारे कर्णके समीप बारंबार जातेदेखकर तृतीय नेत्र ईर्षाकरि कुछ एक अरुणताको धारण करे है—क्योंकि सब वस्तुओंमें समानोंमें भी एकको अधिकता होनी तौ अधिकोंको असह्य होय है—सो कैसे हैं तुम्हारे कर्ण कि ब्रह्मा आदि महा कवि जो हैं आपके पद पदार्थको गूंथगूंथ करि सुंदर तुम्हारी स्तुति करें सोई हुये पुष्पोंके गुच्छे तिसकी सुगंधि करिकें भरेहैं—सो तुम्हारे कटाक्षरूपी भ्रमर कैसे हैं कि नवीन रसके विषें परम तरलहैं—अर्थात् लोलुप हैं वे परम चाहको धारण करें हैं ५०॥

शिवे शृंगारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा सरोषा गंगायां गिरिशचरिते विस्मयवती। हराहिभ्यो भीता सरसिरुहसौभाग्यजयनी सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा ॥ ५१ ॥

भा०टी–अब फिरभी श्रीभवानीजीकी दृष्टि की स्तुति करते हुए प्रार्थना करते हैं कि–शिवे–इस पद्यकरके तहां कहैं हैं कि हेमातः! जो आपकी श्री दृष्टि शिवजीके विषे शृंगार रसकरिकें सरस है–और अन्यदेवताओंके मुखमें ग्लानिको धारण करै है–तथा श्रीशिवजीके मस्तकनिवासिनी गंगाजीके विषे क्रोधको धारण करै है–और श्रीमहादेवजीके जो चरित्र स्मशान स्थान आदि तिनमें आश्चर्यको धारण करैं हैं–और जो आपकी दृष्टि श्री महादेवजीके आभूषण सर्पोंविषे भयको धारण करै है–और कमलोंकी शोभा की जयको धारण करै है–और सखीजनोंके विषे ईषत् हास्यको धारण करैहै–सो हेमातः! आपकी नवरसमयी श्रीदृष्टि मेरे विषे करुणा को धारण करो ॥ ५१ ॥

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती पुराभेत्तुश्चित्त-प्रशमरसविद्रावणफले । इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकुलोत्तं-सकलिके तवाकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ॥ ५२ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके नेत्रोंकी ओर भी स्तुति वर्णन करैं हैं–कि हे गिरिराजकुमारीकुलभूषण कलिके ! हे मातः! तुम्हारे जो कर्ण पर्य्यंत दीर्घ सुंदर नेत्र ते पलकों को बाणोंकी भाँति धारण करते हुए कर्ण पर्य्यंत खेंचे कामदेवके बाणके विलासको रचैं हैं–सो कैसेहैं श्रीनेत्र कि जो श्रीमहादेवजी सत्व रज तम इन तीनों पुरोंको भेदन करिकें निर्गुण स्वरूपमें स्थित रहे–तिस श्रीमहादेवजीके संसार विषय विरागको भुलादेनेमें परम प्रवीणहैं ५२॥

विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरतनीलाञ्जनतया विभाति त्वन्नेत्र-त्रितयमिदमीशानदयिते । पुनः स्रष्टुं देवान् द्रुहिणः हरिरुद्रानुपरतान् रजः सत्वं बिभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिति ॥ ५३ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीके नेत्र त्रयकी फिरभी स्तुति वर्णन करें हैं-कि हे हरवल्लभे! तुम्हारे जो नेत्रत्रय ते ब्रह्मा विष्णु और रुद्र इनको प्रलयके अनंतर फिरभी उत्पन्न करनेको सत्व रज तम इन तीनों गुणोंको धारण करि प्रकट वर्णत्रय रक्त श्वेत और श्याम इन तीनों वर्णोंको नीलांजन करिकें धारण करेहुए परम शोभायमान हैं ॥ ५३ ॥

पवित्रीकर्त्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये दयामित्रैर्नेत्रैर-रुणधवलश्यामरुचिभिः। नदः शोणो गङ्गा तपनतन-येति ध्रुवमिमं त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि संभेदमनघे ॥५४॥

भा० टी०—अब श्रीजीके नेत्रोंकी और भी स्तुति वर्णन करें हैं—कि हेपशुपतिपराधीनहृदये—हे शिवजीके विषे संलग्नचित्ते! तुम्हारे जो हैं—भक्तोंपर दया करिकें हितकारी श्रीनेत्र ते प्रसिद्ध पावन जो शोणनद—और श्रीगंगाजी तथा श्रीयमुनाजी इन तीनों तीर्थोंका संयोग तिसे रक्त श्वेत और श्याम इन तीनों वर्णों करिकें धारण करें हैं सो हेअनघे हेनिष्पापे! हम जो तुम्हारे चरणसेवक तिन्हें निश्चयकरिकें पवित्र करनेके अर्थ धारण करें हैं५४॥

तवापर्णे कर्णे जपनयनपैशून्यचकिता निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः। इयं च श्रीर्बद्धच्छद-पुटकपाटं कुवलयं जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ॥ ५५ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके नेत्रोंकी और स्तुति करें हैं कि—हे अपर्णे! हे सकल ऋण नाश करने वाली! आपके कर्णके विषें जो वारंवार प्राप्त होकर कहे जो तुम्हारे नेत्र तिनकी चुगलीके भय करिकें शफरी जो मत्स्य विशेष सो पलक एकभी बाहर नहीं लगावें हैं और शीघ्रही जलमें प्रवेश

करि जाय हैं क्योंकि वह शफरियां नेत्रोंकी चेष्टा करनेसे निश्चय सा- पराध हैं सो हे भगवतीजी! कमलोंकी जो शोभा सोभी चोरकीसी भांति दिवसमें कमलोंको त्याग देती हैं—और कमलभी अपनी पंखडी रूप पटों अर्थात् किवाडोंको लगाय लेते हैं—क्योंकि एककी नकल करना कदाचित् विदित होय तो निश्चय दंड होता है ॥ ५५ ॥

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये। त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिद- मशेषं प्रलयतः परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः॥५६॥

भा० टी०—अब फिर श्रीजीके नेत्रोंकी स्तुति वर्णन करें हैं कि हे गिरिराजनंदिनी! आपकी जो श्रीपलकें तिनके लगनेसे और खुलनेसे संपूर्ण सृष्टिका संहार और उत्पत्ति होय है—यह त्रिकालज्ञ जो ब्रह्मादिक ते सत्य वर्णन करें हैं—क्योंकि आपके उन्मेषसे अर्थात् पलकोंके खुलनेसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न है—और जो आपकी पलक लग जाँय तो प्रलय हो- जाय—इस हेतु प्रलयसे संपूर्ण सृष्टिकी रक्षाके अर्थही आपके नेत्रोंकी पलक आप नहीं लगाओहो—यह हम अपने अंतःकरणमें निश्चय धारण करें हैं॥५६॥

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे। अनेनायं धन्यो भवति च न ते हानिरियता वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः॥ ५७॥

भा० टी०—अब श्रीजीसे प्रार्थना करें हैं कि हे कल्याणमूर्त्ते! अपनी जो परम कृपादृष्टि तिसकरिकें हमेंभी कृतार्थ करो—जो आपकी दृष्टि अत्यन्त दीर्घताको धारण करे है—और प्रफुल्लित जो नीलकमलोंके वन तिनकी

कांतिसे अत्यंत अधिककांतिको धारण करे हैं कैसे हैं हम कि अत्यंत दूर वर्तमान हैं—और फिरभी दीन हैं अर्थात् अनेक प्रकारकी जो तृष्णा और कृपणता तिसकरिके परम याचक हैं—और हेदेवि ! इस आपकी कृपा दृष्टि करके यह स्थिर चर प्रपंच धन्य होय है—और इससे कुछ आपकी हानिभी नहीं अर्थात् आपको यत्न विशेष नहीं करना पडे है—क्योंकि चंद्रमा अपनी किरणों को वनमें और राजमहलमें समानहीं दान करे है ॥ ५७ ॥

अरालं ते बाली युगलमगराजन्यतनये न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम् । तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लंघ्य विलसन्नपाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसंधानधिषणाम् ॥ ५८ ॥

भा० टा०—अब श्रीजीकी बालीकी जोडी जो कर्णभूषण तिसे स्तुति करें हैं—कि हे पर्वतराजकुमारी ! आपकी जो हैं कर्ण विषे धारण करीं हुई बाली जो कि चक्राकार शोभायमान हैं सो कौनको—कामदेवकी धनुष न जानी जाय—अर्थात् कामदेवका धनुषही सबको जाना जाय है—जिस बालीका रूप धनुपमें तिरछा आपका नेत्रकटाक्ष श्रवणके मार्गको उलंघन करके बाणकी बुद्धिको प्रीतीत करें है ॥ ५८ ॥

सरस्वत्याः सूक्तीरमृतलहरीकौशलहराः पिम्बन्त्याः शर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरतम् । चमत्कारश्लाघाचलितशिरसाकुण्डलगणो झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥ ५९ ॥

भा० टी०—अब श्रीभगवतीजीके रत्नजटित मुक्ता सूक्ष्म कुंडलगणोंकी स्तुति करें हैं—कि हे शिवमहिले! श्रीसरस्वतीजीकी जो सुंदरगानकी

तानसूक्ती तिन्हें कर्ण रूपी पात्र करिकें पान करनेवाली अर्थात अनुभवकर-
नेवाली जो आप सो जब सरस्वतीजीकी प्रशंसाके अर्थ श्रीशिरको चलाओ
हो—तिस समयमें आपके कर्णमें जो सूक्ष्मचित्र विचित्र मणिजटित सुंदर
कुंडल समूह अर्थात् गुच्छे तिनके जो उच्चशब्द परममनोहर ते आपकी करी
श्रीसरस्वतीजीकी प्रशंसा को अपने शब्दकरकें मुखसें वर्णन करें हैं ॥५९॥

स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलितताटंकयुगलं चतुश्चक्रं शंके
तव मुखमिदं मन्मथरथम् । यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्के-
न्दुचरणं महावीरो मारः प्रमथपतये स्वं जितवते ॥ ६० ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके ताटंक जो कर्णफूल तिन्हें स्तुति करें हैं—
कि हेमातः! आपका जो श्रीमुख तिसे चार चक्रोंको धारण किये हुए का-
मदेवका जो रथ तिसे हम तर्कना करें हैं—जिस तुम्हारे श्रीमुखमें कपोलों-
के मध्यविषे कर्णफूलकी झाई दोनों कर्णफूलके और विराजमान हैं जिस
चार चक्रज मुखरूप रथमें स्थित होकर महावीर कामदेवजी श्रीमहादेव-
जीका जय करें हैं—जोश्रीमहादेवजी पृथिवीको रथ करिकें—और सूर्यचं-
द्रको पय्येकर दो पय्याके रथमें बैठ काम देवको जय करें हैं—बात यह
है कि श्रीमहादेवजीने कामदेवके दो चक्रमें बैठकर जय किया—इस हेतु-
से कामदेव श्रीजीकी सहायतासे चार चक्रके रथमें बैठकर श्रीमहादेवजी-
की सत्य जय करें हैं ॥ ६० ॥

असौ नासावंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटि त्वदीयो नेदीयः
फलतु फलमस्माकमुचितम् । वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशि-
रतरनिश्वासजनिताः समृध्या यश्चास्ते वहिरपि च
मुक्तामणिधरः ॥ ६१ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी नासिकाकी स्तुति करते मुक्तामणिकी स्तुति वर्णन करें हैं—कि हे गिरिराजवंशध्वजपटि ! हे हिमाचलके वंशकी कीर्त्तिध्वजा—आपकी जो नासिका सो ललाट पर्य्यंत वंशकी भांति शोभायमान है—सो हमारे अर्थ निकटवर्त्ती उचित फलोंको अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष इन्हें देउ अर्थात् संपादन करो—जो आपकी नासा वंश अपने मध्य विषें शीतल शीतल श्वासों करिकें उत्पन्न किये मुक्ताफलोंको धारण करताहुआ बाहरभी अपनी संपत्ति करिकें मुक्तामणिको धारण करें विराजमान है ॥ ६१ ॥

प्रकृत्या रक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता । नबिम्बं त्वद्विम्बप्रतिफलनलाभादरुणितं तुलामध्यारोढुं कथमपि न लज्जेत कलया ॥ ६२ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके अधरकी स्तुति करें हैं कि—हे सुदति—सुंदर दंतोंको धारण करने वाली ! स्वभावही करिकें आरक्त जो आपके श्रीअधर तिनकी शोभाको मूंगेके साथ हम तब उपमा देंय कि जब मूंगेमें फलमिलै—क्योंकि पहिलें तौ मूंगेमें फल होता और अपने वृक्षसे अधिक लाल होता सोभी नहीं है और दूसरे मूंगेके साथ उपमा का फल जब होय तब उपमान जो मूंगा सो उपमेय जो श्रीअधर तिनसे विशेष गुणवान होय सोभी नहीं है और बिंबनाम जो कंदूरी फलहै तिसके साथ जो श्रीअधरकी सादृश्य कहें तौ हे ईश्वरि ! यह आपके अधरकी शोभाकी एक कलाकोभी नहीं पावे और परम लज्जित होय है—क्योंकि आपके शरीरकी छायाही करिकें जितने लाल पदार्थ हैं सो सब लालरंग रक्तताकोही पाते हैं ॥ ६२ ॥

स्मितज्जोत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिवतां चकोराणामासीदतिरसतया चंचुजडिमा ॥ अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीं भग्नरुचयः पिवन्ति स्वच्छन्दं निशिनिशि भृशं कांजिकधिया ॥ ६३ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके मुखकी प्रशंसा करते हैं कि—हे अंबे ! आपका जो चंद्रवदन तिसका जो कांतिजाल तिसको पान करते जो चकोर तिनकी चोंच अति रस पीनेसे जडताको प्राप्त होगई—इसीसे नित्यनित्य रात्रि में चंद्रमाकी किरणरूप अमृतको मन बिगाडकर कांजीकी भांति पीपीकर अपनी ओषधी करें हैं—क्योंकि चंगेहोके श्रीजीका मुख देखकर फिरभी पान करें—यहां चकोर तो गृहस्थ श्रीभक्तजन हैं—और चंद्रमाकी किरण पीना कुटुंबके पालनके लिये लोकसाधन आजीविका है—और चोंचजाडिमा निर्धनता है सो यथायुक्ति जैसें बनें तैसेंही—ऐसाभी अब इस समयमें संभव है अर्थात् हो या न होय ॥ ६३ ॥

अविश्रांतं पत्युर्गुणगणजपाम्रेडनजडा जपापुष्पच्छाया तव जननि जिव्हा जयति सा । यदग्रासीनायाः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी सरस्वत्या मूर्त्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा ॥ ६४ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी जिव्हाकी स्तुति करते हैं कि हेजननी ! गुढहलके पुष्पकी समान रक्त जो आपकी जिव्हा सो हेभगवतीजी! सर्वोत्कर्ष करिकें वर्त्तमान हो—जो कि जिव्हा श्रीशिवजीके गुणानुवादोंको वारंवार याद करती भई और शब्दका ग्रहण कभी नहीं करती—और जिस आपकी जिव्हाके अग्रभागमें स्थित जो श्रीसरस्वतीजी तिनकी जो स्फटिकवत्

निर्मल गौर मूर्त्ति—सो जिस जिह्वाकी प्रभासे माणिक्य जो परम रक्त मणि तिसकी कांतिको धारण करें है ॥ ६४ ॥

रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचिभिर्निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः । विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकलाः विलुप्यन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकणिकाः ॥ ६५ ॥

भा० टी०—अब आगम शास्त्रमें ब्रह्मादिक देवताओंको श्रीजीके पुत्र वर्णन कियाहै सो अर्थ करते हैं कि हेमातः! आपके श्रीमुखके आस्वाद किये परम अमृत तांबूल जिनके विषे चंद्रमाकी कांति समान कर्पूरको आदि अनेक पदार्थ धारण किये तिनको आपके खायेहुए तांबूलोंको स्वामि कार्तिक और इन्द्र और विष्णु वे सब देव स्वीकार करें हैं—सो कैसेहैं स्वामि कार्तिक आदिदेव—कि दैत्योंको जीतजीत उनके राजचिन्ह शिरोमुकुट आदि दूर करा दिये हैं—सो अब युद्धसे जयकरिके अर्थात् जीतकर आये हैं—और कवच जो बख्तर तिसे धारण किये हैं—और श्रीमहादेवजीका जो महाप्रसाद सो जिन्होंने नहीं पाया—क्योंकि युद्धमें विलंब होनेसे अन्य अधिकारियोंने स्वीकार करलिया है ॥ ६५ ॥

विपञ्च्या गायन्ती विविधमवदानं पशुपतेस्त्वयारब्धे वक्तुं चलितशिरसा साधुवचनैः । तदीयैर्माधुर्य्यैरपहसिततंत्रीकलरवान्निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥ ६६ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीका राजचरित और वचन माधुर्य्य वर्णन करते हैं—कि हे परमेश्वरी ! श्रीशिवजीके नाना प्रकारके पराक्रमोंको अपनी वीणा

करिके आपके सन्मुख गान करती जो श्रीसरस्वतीजी—तिन्हें जब तुम अपने सुंदर मधुरवचनों करिकें उपलालन करो हो अर्थात् हे वत्से ! आपने श्रेष्ठ गान किया—ऐसा कहो हो तब आपके शब्द सुनिकें श्रीसरस्वतीजी अपनी वीणाको चोला धारण करावहैं हैं—क्योंकि आपके शब्दकी मधुरता करिकें वीणा के नेत्ररूप पर्वे लज्जित होजाते हैं—जैसें युवा पुरुषके नेत्रों करिकें लज्जित कांता घूंघटको धारण करलेती है—तैसेंही वीणारूप कांताभी जानिये—श्रीवदनके शब्द माधुर्य्य युक्त नेत्रोंसे लज्जितहो सरस्वतीजीको देखकर अपने पर्वरूपी नेत्रोंको चोलेके घूंघटमें धारण करें हैं ॥ ६६ ॥

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया । करग्राह्यं शम्भोः मुख मुकुरवृन्तं गिरिसुते कथंकारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्यरहितम् ॥ ६७ ॥

भा०टी०—अब श्रीभगवतीजीकी चिबुक जो ठोडी ताहि स्तुति करेंहैं—कि हेहिमगिरिसुते—जिसकेलिये कोई उपमा नहीं मिले—ऐसी जो आपकी ठोडी तिसे हम कौन प्रकारसे वर्णन करें—जोकि बाल्यावस्थामें पिता हिमाचलनें लाड—प्यार समयमें हाथ करके लालन करी और गिरीश जो श्रीमहादेव तिन्होंने अधरामृत पीनेके अर्थ बारंबार अपने हाथोंकारिकें उत्तोलन करी अर्थात् प्रकार विशेष करिके ग्रहणकरी—और हेदेवि ! आपका जो मुखरूप दर्पण तिसकी नाल की भांति सो विराजमान है—ऐसा जो आपका मुखरूप दर्पण ताय श्रीमहादेवजी अपने हाथमें ग्रहण कारिकें अपना निज स्वरूप विलोकन करें हैं अर्थात् देखते हैं ॥ ६७ ॥

भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कंटकवती तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमहो । स्वतः श्वेता काला-

गरुडहलजंबालमालिना मृडालीलालित्यं वहति यदधो हारलतिका ॥ ६८ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी ग्रीवाकी स्तुति करें हैं-कि हे भगवतीजी ! आपकी ग्रीवामें लंबायमान जो मुक्तामाल सो कमलकी डंडीकी शोभाको धारण करे है-इस हेतुसे आपकी ग्रीवा तुम्हारे मुख रूप कमलकी नालकी शोभाको धारण करे है-सो कैसी है आपकी ग्रीवा कि श्रीमहादेवजीकी भुजाओंका जो नित्य आश्लेष तिस कारिकें कंटकवती है अर्थात् पुलकित है और स्वभावहीसे गौर वर्ण है-और श्याम अगर जिसमें विद्यमान ऐसा जो सुगंध कर्दम तिस कारिकें श्याम वर्णको धारण करे है-जो साक्षात् श्रीमुख कमलकी नाल ही विराजमान शोभायमान होरही है ॥ ६८ ॥

गले रेखास्तिस्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्याप्रतिभुवः । विराजन्ते नाना विधमधुररागाकरभुवां त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते ॥ ६९ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी गलरेखा तीनोंकी स्तुति करें हैं कि हे गतिगमकगीतैकनिपुणे ! गति जो आलाप तिसमें और गमक जो जमे रागका उलटना पलटना तिसमें और गीत जो हैं अगले पिछले पदोंमें इकट्ठे अर्थोंको संबंधसे कहना तिसमें चतुर आपके गले विषे जो तीन रेखा सो हे देवी । विवाहमें कन्याओंके गलेमें मंगलसूत्र प्रगुण गुण नाम धारण किया जाय है तिसकी रीतपर त्रिवलित हैं-और सब रागोंके उत्पत्तिस्थान जो तीन ग्राम तिनकी सूरतकी सीमा अर्थात् हदसी विराजें हैं ॥ ६९ ॥

मृडालीमृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणां चतुर्भिः सौन्दर्य्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः । नखेभ्यः संत्रस्यन् प्रथमदमनादन्धकरिपोः चतुर्णां शीर्षाणां सममभय-हस्तार्पणधिया ॥ ७० ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी भुजाओंकी स्तुति वर्णन करें हैं कि-हेभ-वानीजी! आपकी जो कमलकी नाली समान कोमल चारों भुजा तिन्हें ब्रह्मा अपने चारों मुखसे चारों शिरोंके ऊपर शिवजीका अभय हाथ होनेकी बुद्धि करके अर्थात् श्रीशिवजी इन शिरोंको भयका देनेवाला हाथ न लगावें इस हेतु डरता हुआ स्तुति करे है-बात यह है कि श्रीशिवजी तौ सबको अपने श्रीहाथसे अभयही देते हैं परंतु इससे कोई अपराध ऐसा नभुनें कि जो शिवजी कों रुद्रमूर्त्ति करकें दंड देना पडे फिर मुझे और खेद होय ॥७०॥

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतां कराणां ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे । कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हंत कमलं परिक्रीडल्लक्ष्मीचरणदललाक्षारुण-दलम् ॥ ७१ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके हाथोंके नखोंकी स्तुति करें हैं कि-हे अम्बे! आपके जो हैं श्रीहस्त तिनकी कांतिको हम स्वल्प बुद्धी कैसें वर्णन करसकें-यह आपही कहो-क्योंकि आपके श्रीहस्त अपने नखोंके प्रकाश करके नवीन लाल कमलोंकी शोभाको तिरस्कार करें हैं-और हे भगव-तीजी-जो कदाचित् आपके हाथोंकी तुल्यताको प्राप्त होय तौ कोई एक कला करिकें लाल कमल भलेंही प्राप्त होय-जो कि रक्त कमल सर्वत्र क्रीडा करने वाली जो आपकी प्रति सोभारूप लक्ष्मी तिसकी चरणतल-

लाक्षासे अरुण दलोंको धारण करे है-प्रयोजन यह है कि और उपमा प्राप्त हो नहीं सके है-क्योंकि सर्वत्र सुंदर पदार्थोंमें प्राप्त जो आपकी छायारूप लक्ष्मी तिसकी प्रभाव करिकें आपकी समान सादृश्य कुछ एक बनेहै अर्थात् आपहीसे आप तुल्यता हो सके है ॥ ७१ ॥

समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगं तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्तुतमुखम् । यदालोक्याशंकाकुलितहृदयो हासजनकः स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति॥७२॥

भा० टी०—अब श्रीजीके कुचोंकी स्तुति करें हैं कि-हे देवि! आपके जे स्तन युगल ते हमारे खेदको दूर करो-जो श्रीस्तन स्वामिकार्तिक और श्रीगणेशजी इन करिकें संग पान किये जांय हैं-जो सुंदर दुग्धसे भरे हैं-और जिन स्तन युगोंको देखकर श्रीगणेशजीको अपने मस्ककी शंका होनेसे शीघ्रही अपने मस्तकको हाथसे देखकें सबको हास्य करावें हैं-प्रयोजन यह है कि श्रीजीके स्तन युगल गजकुंभकी अत्यंत सदृशताको धारण करें हैं जो कि श्रीगणेशजीकोभी भ्रम दिवाय दें हैं-जो कि श्रीगणेशजी सबका भ्रम दूर करें हैं ॥ ७२ ॥

अमू ते वक्षोजावमृतरसमाणिक्यकलशौ न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः । पिबन्तौ तौ यस्मादविदित-वधूसङ्गरसौ कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ ॥७३॥

भा० टी०—अब श्रीजीके स्तनोंकी फिर भी स्तुति करें हैं कि-हे नगपतिपताके! हे गिरिराजके वंशकी ध्वजा-आपके जो दोनों स्तन सो निश्चय करिकें अमृतके भरेहुए रत्नके कलश हैं-इसमें संदेह नहीं-क्योंकि इसही कारणसे श्री गणेशजी और स्वामि कार्तिकजी आपके स्तनोंको पान

करिकें स्त्रीसंगमको नहीं जानंत हैं—सो सत्र कालमें वे कुमारभावको ही धारण करें हैं ॥ ७३ ॥

वहत्यम्ब स्तंबेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः समारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकाम्। कुचाभोगो बिम्बाधररुचिभिरन्तःशबलितां प्रतापव्यामिश्रां पुरविजयिनः कीर्त्तिमिव ते ॥ ७४ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके कुचमंडलकी स्तुति करें हैं कि—हे अंबे! आपके जो कुचमंडल सो मोतियोंके हारको श्रीमहादेवजीकी कीर्त्तिकी भांति धारण करें हैं जो कि मुक्ताहार हस्ती स्वरूप दैत्यराजके मस्तकके परमसुंदर मोतियों करिकें रचित है—ओर परम निर्मल है—ओर हे भगवतीजी! आपके जो श्रीअधर तिनकी छाया करिके मध्यभाग विषें अरुण है सो मानों आपके श्रीप्रताप करिकें मिला है ॥ ७४ ॥

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः पयःपारावारः परिवहति सारस्वात इति। दयावत्या दत्तं द्रुहिणशिशुरास्वाद्य तव यत् कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥ ७५ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके दुग्धमाहात्म्य ओर करुणा इनको वर्णन करें हैं—कि हेमातः! आपका जो स्तन्यहै दुग्ध सो आपके हृदयसे सरस्वतीजीका क्षीर सागर रूप प्रवाह है हम यह निश्चय जानते हैं जो कि द्रुहिण शिशुको आपने पान कराया परम कृपाकरके ओर वह छः महीनेकी अवस्थामें काञ्चीदेशमें कविमात्रका राजा हुआ सो कांची देशमें द्रुहिण नाम ब्राह्मणके बालकको छः महीनेकी अवस्थामें श्रीभगवतीजीने अपना दुग्ध पिवाया जिसके प्रताप करिकें वह महाकवि प्रसिद्ध हुआ ॥ ७५ ॥

हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा गभीरे ते नाभी सरसि कृतसंगो मनसिजः । समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति॥७६॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी रोमावली की स्तुति वर्णन करें हैं कि—हे जननि! श्रीमहादेवजी के क्रोधसे उत्पन्न जो महादेवजीके नेत्रकी ज्वालावली तिसकरिकें भस्म होरहाहै शरीर जिसका ऐसा जो कामदेव सो हेभगवतीजी ! आपके नाभीरूप सरोवरमें जिस समय प्रवेश करता भया तिस समयमें आपका जो श्रीनाभि रूप सरोवर तिससे उठी जो धूमलतिका जो यह अब भी विद्यमान है तिसे सब जन रोमावली जानें हैं—और पिता करिकें ताडित जो पुत्र सो माताका आश्रय करे है—अब श्रीमहादेवजी करिकें ताडित जो कामदेव सोभी जगन्माता श्रीजीके नाभिरूप सरोवरमें छुपिकर अपनी रक्षा करता भया है ॥ ७६ ॥

यदेतत् कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति शिवे कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव तद्भाति सुधियाम् । विमर्दादन्योन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं तनूभूतं व्योमप्रविशदिव नाभिं कुहरिणीम् ॥ ७७ ॥

भा० टी०—अब फिरभी श्रीरोमराजीकी स्तुति करें हैं कि हेमातः ! आपके सूक्ष्म मध्यभाग विषें कोई एक जो यह वस्तुविशेष विद्यमान है—जो कि श्रीयमुनाजीकी सूक्ष्म तरंगोंके स्वरूप को धारण करै है—जिसे रोमावली वर्णन करें हैं—सो हेभगवतीजी यह रोमावली दोनों कुचोंके मध्य विषें वर्त्तमान होनेसे कुचोंके संघर्षण करके दबनेसे—सूक्ष्म रूप धरे आकाश जो आपकी नाभी ताहि प्रवेश करेहै—यह श्रेष्ठ पुरुषोंको भासित होयहै ॥७७॥

स्थिरो गङ्गावर्त्तः स्तनकुकुलरोमावलिलताऽऽलवालं सत्कुण्डं कुसुमशरतेजो हुतभुजः। रतेर्लीलागारं किमिति तव नाभीति गिरिजे बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते ॥ ७८ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी नाभिकी स्तुति करें हैं कि–हेगिरिजे! यह जो आपकी नाभी है किंवा स्थिर भावको प्राप्त श्रीगंगाजीका आवर्त्त है–किंवा स्तनरूपकली जिसमें विद्यमान है–ऐसी रोमावली वेलका थांवला है–जोकि कामदेवके तेजरूप अग्निका श्रेष्ठ कुंडल है–किंवा कामदेवकी स्त्री जो रति तिसके विहारका स्थानहै किंवा श्रीमहादेवजीके नेत्रोंको परासिद्धिका द्वारहै–जो हेभगवती विजयको अर्थात् सर्वोत्कर्षताको प्राप्त है ॥७८॥

निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषा नमन्मूर्त्तेर्नाभौ वलिषु शनकैस्त्रुट्यत इव। चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा समावस्थस्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये ॥७९॥

भा० टी०— अब श्रीजीकी श्रीकटिकी स्तुति करेंहैं कि–हे गिरिजे! आपका मध्यभाग जो है कटिभाग तिसकी चिरकाल कुशल रहै–क्योंकि पहिले तो स्वभावहीसे सूक्ष्म है और दूसरे जिसमें विशेष करके स्तनभार विद्यमान और इसी हेतुसे गमन समयमें झोंकको प्राप्त होय और नाभि और त्रिवली इन स्थानोंमें विशेष पुष्ट नहीं और त्रुटितसे जाने जाँय ऐसे जो नदीके तीरके तरु तिनकीसी अवस्थाको प्राप्त है–सो हे जगज्जननी! जिस आपकी श्रीकटिकी कुशलतासे कुशलकीभी कुशल हम निश्चय करिकें जानते हैं ॥ ७९ ॥

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजात् नितम्वा-
दाच्छिय त्वयि हरणरूपेण निदधे। अतस्ते विस्तीर्णो
गुरुरयमशेषां वसुमतीं नितम्बप्राग्भारः स्थगयति
लघुत्वं च नयति ॥ ८० ॥

भा० टी०—अत्र श्रीजीके नितम्ब अर्थात् कूलोंकी स्तुति करें हैं कि—
हेपार्वतीजी! आपका पिता जो श्रीहिमाचल सो अपने स्थानसे गुरुताई और
विस्तार इन दोनों वस्तुओंको दायज अर्थात् शोभामें विवाहके समयमें
आपके अर्थ देताभया है—इसी कारणसे विस्तीर्ण और गुरु जो आपके
नितम्ब सो हेभगवतीजी! संपूर्ण पृथिवीको आच्छादन करें हैं और पृथिवी-
को लघुताको प्राप्त करें हैं ॥ ८० ॥

कुचौ सद्यस्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ कषन्तौ दोर्मूले
कनककलशाभौ कलयता। तव त्रातुं भङ्गादलमिति
विलग्नं तनुभुवा त्रिधा बद्धं देवि त्रिवलिलवलीवल्लि-
भिरिव ॥ ८१ ॥

भा० टी०—अत्र श्रीजीके स्तनोंकी फिरभी और स्तुति करें हैं कि—
हेदेवी! आपके जे कुच हैं तिन्हैं कनककलशकी भांति देखकर अत्यन्त
गुरुताके हेतुसे विचार करता जो कामदेव तिसने लवली नाम जो कोई सुंदर
लता तिसकी समान त्रिवली करिकें भंगहोनेसे रक्षाके अर्थ तीन प्रकार करिकें
मध्यभाग बंधन किया है—जो कि कुचकलश शीघ्रही यौवनमदकी ऊष्मा
करिकें जलकण करिके युक्त हैं—और अत्यंत चीन जो कंचुकी तिसकरि
भेदनशील हैं—और भुजाओंका जो मूल तत्पर्यन्त व्याप्त जो हैं ॥ ८१ ॥

करीन्द्राणां शुण्डाः कनककदलीकाण्डपटलीमुभाभ्या-
मूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती । सुवृत्ताभ्यां पत्युः
प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते विजिग्येजानुभ्यां विबुधकरि
कुम्भद्वदयमपि ॥ ८२ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके ऊरुद्वय अर्थात् जंघाओंकी स्तुति वर्णन करें हैं कि—हे हिमगिरिसुते—करीन्द्रोंके जो हस्त अर्थात् शुंडादंड तिन्हैं—और सुवर्णके जो कदलीके खंभ तिन्हैं अपने जंघाओंकरि जीतकें और ऊरू जानुकी मध्य पिंडालियों करिकें ऐरावत हार्थीके मस्तक कुंभकोंभी जीतौ हौ—जोकि आपकी पिंडली परम वर्तुलाकार हैं अर्थात् गोलाकार हैं—सो श्रीमहादेव जीके अर्थ नमस्कार करनेसे कठिन कठोरभाव को धारण करें हैं ॥ ८२ ॥

पुराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते निषङ्गौ ते जङ्घे
विषमविशिखौ बाढमकृत । यदग्रे दृश्यंते दशशरफलाः
पादयुगलीनखाग्रच्छद्मानः सुरमुकुटशाणैकनिशिताः॥८३॥

भा० टी०—अब श्रीभवानीजीके श्रीपादकी स्तुति करें हैं कि—हेगिरिसुते—विषम विशिख जो कामदेव सो पहिलें श्रीरुद्रको जीतनेके अर्थ आपकी जो जंघा तिन्हैं तरकस करताभया है जिन दोनों जंघाओंके अग्रभाग पादोंमें जो नख सो एक व्याजमात्र हैं—और सत्य तौ दश बाणोंके दशभाल हैं—जो कामदेवजीने अपने पाँचबाणोंको द्विगुणकरिकें स्थापन किये हैं—और देवताओंके जो शिरोमुकुट सोई भये हैं सान—तिन करिकें अग्रभाग भालमें निशित हैं अर्थात् अधिक पैंने हैं ॥ ८३ ॥

हिमानी हन्तव्यं हिमगिरितटाक्रान्तिरुचिरौ निशायां
निद्राणं निशि च परभागे च विशदौ । परं लक्ष्मीपात्रं

श्रियमपि सृजन्तौ समयिनां सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम् ॥ ८४ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके चरणोंकी फिरभी स्तुति करेंहैं कि–हेजननी। आपके जो श्रीपाद सो सरोजको जीते हैं–सो कुछ आश्चर्य्य नहीं–क्योंकि संपूर्ण गुणधारी न्यूनगुणवालेको जीतताही है–सो कहते हैं कि सरोज जो कमल सो तो तुषारसे नाशको प्राप्त होता है–और जो आपके श्रीचरण हिमालयके तट विषें संचारकरनेसे भी परम शोभाको धारण करें हैं–और कमल तौ रात्रिमें मुद्रितहो जाते हैं–और श्रीचरण रात्रि तथा दिन इन दोनोंमें सुशोभित रहते हैं–और कमल तौ केवल लक्ष्मीजी का ही पात्र है–वह दानभोगमें सामर्थ्यशून्य है–और श्रीजीका चरण तौ भक्त जनोंको अनेक प्रकारसे संपत्तियों का दान करें हैं ॥ ८४ ॥

नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयोः तवास्मै द्वंद्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते । असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्केलितरवे ॥ ८५ ॥

भा० टी०—अब और भी श्रीजीके पादकी स्तुति करें हैं कि–हेभगवतीजी ! आपके जो नयनके अर्थ परम रमणीय श्रीपदद्वंद्व तिनको हम वारंवार नमस्कार करें हैं–जो कि आपके पदद्वंद्व परमसुंदर कान्ति और द्रव इन करिके युक्त महावरको धारण करें हैं और जिन पदद्वंद्वके पीछे श्रीमहादेवजी लीलोद्यानके कंकेलित रूपसे अर्थात् अशोक वृक्षसे स्पर्द्धा करें हैं–सो अशोक वृक्ष श्रीजीके चरण का अपने को ताडनकी वांछा करे है ॥ ८५ ॥

मृषाकृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं ललाटे भर्त्तारं चरणकमले ताडयति ते । चिरादन्तःशल्यं दहनकृत-

मुन्मीलितवता तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितमी-
शानरिपुणा ॥ ८६ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके चरणकमलकी फिर स्तुतिकरें हैं कि–हे देवीजी ! आपके जो चरण कमल ते भर्त्ता जो श्रीशिवजी तिन्हे ललाट विषें ताडनकरनेको ईशानरिपु जो कामदेव सो श्रीजीके चरण नूपुरके शब्दके मिसकरिकें किलकिला शब्द करताभया–जबसें कामदेवको श्रीमहादेवजीने भस्म कियाथा तबसे उस कामदेवके हृदयमें वैरका बाण लगा रहै है सो अपना दूरहुआ जानने लगा–और इसके अनंतर अन्यस्त्रीके नाम ग्रहणको मिथ्या करके और लज्जाको प्राप्त होंगे–इस कारण श्रीमहादेवजी नम्रभावको धारण करते भये ॥ ८६ ॥

पदं ते कान्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां कथं नीतं सद्भिः
कठिनकमठीखर्प्परतुलाम्। कथं वा बाहुभ्यामुपयमनकाले
पुरभिदा समादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥ ८७ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके चरणकमलकी फिर स्तुति करें हैं कि–हे भगवतीजी ! जो आपके श्रीपदकान्तियोंके स्थान और जिनके स्मरणसे विपत्तियोंका नाश होय–तिन आपके चरणकमलोंको कवि पुरुष कच्छपोंकी पीठ जो महा कठिन कठोर तिसकी उपमा कैसें देते हैं–और विवाह समयमें अश्मारोहण कर्म विषें भुजाओंसे आपके चरणोंको ग्रहण करिकें दयायुक्त मनकरके भी कैसें प्रस्तर विषें स्थापन करते भये ॥ ८७ ॥

नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसंकोचशशिभिः तरूणां
दिव्यानां हसित इव ते चण्डि चरणौ । फलानि

स्वस्थेभ्यः किशलयकराग्रेण ददतां दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतां ॥ ८८ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके चरणों की स्तुति फिर करे हैं कि—हे चंडी! जिससमयमें देवताओंकी स्त्री अपने करकमल जोडकर आपके चरणों विषें नमस्कार करें हैं कि जिस समय उन देवस्त्रियोंके नखचंद्रिकाकी चमकसे यह निश्चय होता है कि श्रीभगवतीजीके चरण कमल कल्प वृक्षोंका उपहास करें हैं—क्योंकि कल्पवृक्ष तो केवल अपने पत्ररूपी हाथों करिकें स्वर्गवासी जो परम सुखी तिनकोंही मनोवांछित फल देते हैं—और आपके श्रीचरण तो दरिद्रियों को आदिलेकर सब लोकवासियोंको शीघ्रही सकल संपत्तियाँ देते हैं ॥ ८८ ॥

कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम् । प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया यदादत्ते वाणी मुखकमलताम्बूलरसताम् ॥ ८९ ॥

भा० टी०—अब श्रीभवानीजीके चरणोदकको प्रार्थना करते हैं कि—हे मातः! आपके चरणकमलका प्रक्षालित जो जल तिसे हम विद्यार्थी होकर कब पान करेंगे—जो कि श्रीजल आपके चरणके स्पर्शसे परम निर्मलताको प्राप्त है—और जो पुरुष स्वभाव करिकें मूकभी हैं—और उस चरणोदकका जो पान करें तौ श्रीवाणीजी जो सरस्वती सो उसके पान किये जलको मुख कमल तांबूल रसके भावको मानकर ग्रहण करें हैं—यहां प्रयोजन यह है कि—जिस जिस वस्तुके फल देनेमें जो जो देवता अधिकारी हैं सो सो देवता उस जलके पान करने वाले भक्तको यथेच्छित फल

देनेके अर्थ बीडा खाते हैं अर्थात् ऐसा पदार्थ कोई और नहीं है—जो इस साधन करने वाले भक्तको संपूर्ण देवता भी दें नही सकें—क्योंकि श्रीभगवतीजी सर्वस्वरूप सब फल देनेवाली आपही हैं ॥ ८९ ॥

पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनसः चरन्तस्ते खेलं भवनकलहंसा न जहति । स्वविक्षेपे शिक्षां सुभगमणिमञ्जीररणितच्छलादाचक्षाणं चरणयुगलं चारुचरिते ॥ ९०॥

भा० टी०—अब श्रीजीके चरण कमलकी फिरभी स्तुति करें हैं कि—हे चारुचरिते ! भवन कलहंस जो हैं गृहराजहंस पक्षी विशेष सो आकाशमें अत्यंत बिचरते हैं—परंतु जैसें आप अपने चरणोंको स्थापन पृथ्वीमें करिकें गमन करो हौ तैसें अभ्यास करनेको मन लगायेहुए आपके चरण कमलको त्याग नहीं करते—क्योंकि आपके चरण कमलभी और सुंदर जो आपके झांझनोंका शब्द तिसके छलकरिकें अपनी श्रीचालकी शिक्षा उन हंसोंको करें हैं॥ ९० ॥

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशानुसदृशीममंदं सौन्दर्य्यप्रकमकरन्दं विकिरति । तवास्मिन्मन्दारस्तबकसुभगे यातु चरणे निमज्जन्मज्जीवः करणचरणैःषट्चरणताम् ॥ ९१॥

भा० टी०—अब मनोरथ प्रार्थना करते फिरभी श्रीचरणकी स्तुति करें हैं कि—हेमातः ! यह जो आपके श्रीचरण हैं तिनमें हमारा जो जीव सो छहों इन्द्रियों रूप चरणों करिकें सुंदर स्वादिष्ट अनुभव करता है सो भ्रमरके भावको प्राप्त हो जाय और जो कि आपके श्रीचरण कैसे हैं कि दीन जनोंके अर्थ निरंतर इच्छानुकूल संपतियोंको दान करें हैं—और जो आपके श्रीचरण जो बडा भारी सुंदरता का समूह मधुर रस तिसे विस्तार करें है—और कल्प वृक्षके पुष्पोंके गुच्छेकी समान परमशोभाको धारण करें हैं ॥ ९१ ॥

अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते शिरीषाभा चित्ते दृषदिव कठोरा कुचतटे। भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये जगत्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा॥९२॥

भा० टी०—अब श्रीजीके संपूर्ण शरीरकी स्तुति करें हैं कि—हे अरुणस्वरूप जो श्रीभगवानीजी सो श्रीसदाशिवजीकी कोई एक अवाच्य करुणाकी मूर्ति—जगत्की रक्षाके अर्थ सर्वोत्कर्ष करिकें वर्तमान हो जो श्रीभवानीजी—केशोंके विषे अराल हैं अर्थात् कुटिल हैं—और सुंदर हास्यमें स्वभावहीसे सरल हैं—और शरीरमें शिरीष पुष्पोंकी समान कोमल और कुचों विषे शिला समान कठोर हैं—और उदरके विषे अत्यंत सूक्ष्म और नितंबों विषे परमस्थूलताको धारण करें हैं ॥ ९२ ॥

पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः सपर्य्यामर्य्यादा तरलकरणानामसुलभा। तथाप्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलां तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः॥९३॥

भा० टी०—अब श्रीजीकी भक्तिकी स्तुति करें हैं कि—हे मातः! आप श्रीमहादेवजीकी अंतःपुर हो अर्थात् महिषी कहैं महारानी हो—तिस हेतुसे आपके चरणकमलकी निष्ठा सो अजितेन्द्रिय पुरुषोंको दुःखकरिकें प्राप्त होने योग्य है—अर्थात् वे पुरुष ज्योंकी त्यों नहीं करसकें हैं—तथापि अजितेन्द्रिय जो इन्द्रसे आदिलै देवता ते आपकरिकें अणिमादि सिद्धियोंको प्राप्त होगये हैं जो कि अणिमादि आपके अंतके द्वारपर दासभाव करिकें अर्थात् दास भाव करनेको स्थित हैं॥ ९३ ॥

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः। त्वदीयानां भासा प्रतिफल-

नलाभारुणतया शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम् ॥ ९४ ॥

भा० टी०—अब श्रीभवानीजी का योग पर्य्यंक वर्णन करें हैं कि–हे देवीजी! द्रुहिण जो सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा–और पालन कर्त्ता विष्णु–और संहार कर्त्ता श्रीरुद्र–और सब का तिरोधान कर्त्ता ईश्वर–इन चारों देवताओं करिकें सहित जो श्रीसदाशिव सो आपके मंचके भावको प्राप्त हैं–और जो श्रीसदाशिव आपकी स्वच्छ छाया करिकें आस्तरण जो तोशक और पलंग-पोश इनके भावकोभी प्राप्त हैं–और आपकी अरुण कांतिजालके संबंधसे मूर्तिको धारण किये साक्षात् शृंगार रसकी भांति नेत्रोंको परमानंद सुख देते हैं ॥ ९४ ॥

कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निबिडितम् । अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं विधिर्भूयोभूयो निबिडयति नूनं तवकृते ॥ ९५ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीके योगरूप तांबूल उपकरण पात्रका वर्णन करें हैं कि–हेमातः! यह जो चंद्रमा है सो मरकत मणि करिकें रचित आपके तांबूलकी सामग्रीकी पिटारी है–सोई कृष्ण पक्षमें आपके नित्य नित्य व्ययहोंनेसे खाली होजाय है–तब श्रीब्रह्माजी कला रूप कर्पूर करिकें शुक्लपक्षमें फिरभी वारंवार भरदेते हैं–जिस आपकी तांबूलकी पिटारीमें कलंक जो चंद्रका लांछन सो कस्तूरी और उसमें चंद्रबिंब सुगंधि जल परम प्रकाशमान है ॥ ९५ ॥

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितो निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः । किमाश्चर्य्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम् ॥ ९६ ॥

भा० टी०—अत्र श्रीभवानीजीके अभेद उपासकोंका उत्कर्ष वर्णन करें हैं कि–हे नित्ये ! आपके शरीरकी किरण रूप जो अणिमादिक अष्टसिद्धि अर्थात् आपके आवरण देव तिनकरिकें सेवनी यहँ तो हे देवीजी ! जो पुरुष आपकी अभेद उपासना करें हैं सो पुरुष श्रीशिवजीकीभी संपत्तिको तृणके तुल्य मानें हैं और उस पुरुषकी प्रलयकालकी अग्नि नीराजन विधि करें तौ कौन आश्चर्य है ॥ ९६ ॥

समुद्भूतस्थूलस्तनभरमुरश्चारुहसितं कटाक्षे कन्दर्पः कतिचन कदम्बद्युतिवपुः । हरस्य त्वद्भ्रान्तिं मनसि जनयन्ति स्म विमला भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे ॥९७॥

भा० टी०—अत्र श्रीजीके द्वैतभाव उपासकोंका उत्कर्ष वर्णन करें हैं कि–हे अम्बे ! ये पुरुष आपके विमलभक्त हैं अर्थात् आपके चरण कमलसे अन्य जो विषय रूप मल तिस करिकें रहित हैं ते पुरुष हर जो श्रीमहादेवजी तिनके मनमें आपके रूपकी भ्रान्ती वे अपनेमें उत्पन्न करें हैं–और उन भक्तोंकी परिणति अर्थात् द्वितीय रूप इस प्रकार होय है कि सुंदर वक्षस्थलके स्तन और सुंदरहास्य और जिनके कटाक्ष विषें अनेक प्रकारसे कामदेव विलास करे हैं–और जिनके दर्शनसे कदंबके पुष्पकी समान द्वितीयके रोमांच हो जांय अर्थात् कामदेवसेभी अधिक रूपको प्राप्त हो जाँय हैं ॥ ९७ ॥

कलत्रं वैधात्रं कतिकति भजन्ते न कवयः श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः। महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे कुचाभ्यामासङ्गः कुरबकतरोरप्य- सुलभः ॥ ९८ ॥

भा० टी०—अब श्रीजीका सबसे अधिक सतीत्व वर्णन करें हैं कि- हे सती! आपके सब पहिली सतीनिके आदिमें श्रीब्रह्माणीजी हैं—परंतु विद्या- वान् जो कवि पंडित सो सरस्वतीवल्लभ करिकें विख्यात हैं—और तैसेंही धनों करिकें लक्ष्मीपतिभी लोकमें कहे जाय हैं—और श्रीमहादेवजी विना ओरकी तो क्या गति है कुरबक जो वृक्ष जो कि सुंदर स्वरूप स्त्रीके आलिं- गनसेही पुष्पित होय है तिसकोभी आपका स्पर्श अलभ्य है ॥ ९८ ॥

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमाद्रितनयाम्। तुरीया कापि त्वं दुरधिगम- निःसीममहिमा महामाये विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि॥९९॥

भा० टी०—अब श्रीभवानीजीका परा स्वरूप वर्णन करें हैं कि—हे परब्रह्ममहिषि—हे महामाये—शास्त्रज्ञ पुरुषभी श्रीसरस्वतीजीको आपकाही रूप वर्णन करें हैं—जो श्रीसरस्वतीजी श्रीब्रह्माजीकी पत्नी हैं—और श्रीवि- ष्णुकी पत्नी जो लक्ष्मीजी तिन्हेंभी आपका रूप कहें हैं—और श्रीशिवजीकी जो सहचरी गिरिराजपुत्री सोभी आपका रूप कहें हैं—परंतु दुःख करिकें जानने योग्य और जिसका आदि अंत नहीं ऐसी महिमाको धारण किये अवाच्य—और स्ववेद्य तुरीया आपको निश्चय करें हैं कि तहाँ हे महामाये! आप प्राणिमात्रको अनेक नाना रूप करिकें भ्रम रूपमें भ्रमाती हो और केवल एकही स्वरूप करिकें परम मुक्ति देती हो ॥ ९९ ॥

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विजयते रतेः पाति-
व्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा। चिरंजीवन्नेव
क्षपितपशुपाशव्यतिकरः परब्रह्माभिख्यं रसयति रसं
त्वद्भजनवान्॥ १००॥

भा० टी०—अब श्रीजीका भजन फल वर्णन करें हैं कि–हे देवजी! आपका भजन कर्त्ता जो भक्त सो विद्या करिकें तथा लक्ष्मी करिकें और ब्रह्माविष्णुकी पत्नीकी समान पत्नी करिकें क्रीडा करें हैं–और अपने शरीर करिकें रति जो कामदेवकी स्त्री तिसकेभी पतिव्रतको शिथिल करिदेय है–और ब्रह्मादिक करिकेंभी जो काल न टाला टले तिसे दूरि करिकें और पशुपाश जो घृणा शंकादिक तिनका संबंध जिसे नहीं ऐसा होकरभी परब्रह्मनाम रसका आस्वादन करे है–क्योंकि रसभी ब्रह्मका स्वरूपही है–यह वेदमें वर्णन किया है॥ १००॥

निधे नित्यस्मेरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे निराघात-
ज्ञाने नियमपरचित्तैकनिलये। नियत्या निर्मुक्ते निखिल-
निगमान्तस्तुतिपदे निरातङ्के नित्ये निगमय ममापि
स्तुतिमिमाम्॥ १०१॥

भा०टी०—अब श्रीभवानीजीका निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप वर्णन करते श्रीजीसे अपना मनोभिलाष प्रार्थना करते हैं–कि हे निधे! हे जगतकी आधारभूते! हे नित्यस्मेरे! नित्यही सुंदर हास्य करिकें सुशोभित मुखा-रविंदे! यहां श्रीजीके हास्यमें कारण ये है कि मनुष्योंको झूठे जगतसे सुख दुख मानना जानते हैं–और जगतका आधार तो श्रीजीका शरीर है–और हास्य युक्त सुशोभित मुखारविंदको धारण करना–यह धर्म शरीरी जो

आत्मा–तिसका है–तो जिसकी स्तुति करें हैं वह क्या दो दो प्रकारके हैं तहां कहते हैं कि–निरवधिगुणे–आपके गुणोंकी अवधि नहीं है–अर्थात् जगत्का आधारभूत शरीरभी आप हो–और दास्यको धारण करनेवाली शरीरीभी आपही हो–यहां प्रयोजन यह है कि भक्तोंके कल्याणके अर्थ नानारूप धारण करती हो–तहां कहें हैं कि भक्तोंके अर्थ जो नानारूप धरें हैं तो कोई भक्त दरिद्री कोई राजा यह कैसें बने–इस हेतु कहा–नीतिनिपुणे अर्थात् भक्तिके अनुकूल फल देती हो–कदाचित् कहो कि कर्मके आधीन हैं क्या तहां कहते हैं कि–हे निराघातज्ञाने! आपका ज्ञान किसीके आधीन नहीं–बात यह है कि कर्म करनेसे पहलेही यह ऐसा कर्म करेगा–और ऐसा फल आगे इस पुरुषको होगा–यह ज्ञान सर्वदा आपके विद्यमान है–तो आपके ज्ञानसे पीछे हुआ जो कर्म तिस कर्मके आधीन आपका ज्ञान नहीं–किन्तु–आपके ज्ञानके आधीन कर्म है–न कहो कि सबके अर्थ समानही ज्ञान क्यों नहीं करतीं जिससे सब भलाही कर्मकरें–और सब बराबर श्रेष्ठ फल पावें–तहां कहते हैं कि–नियम परचित्तैकनिलये नियम जो जप पूजादिक कर्म तिसमें संलग्न जो चित्त तिसमें स्थित मात्रहो–न कहो कि नियमके आधीन हैं क्या–तहां कहते हैं कि–नियत्या निर्मुक्ते–जैसा जप पूजादिक कर्म–तैसा फल देनेमें–घट आदिके दिखानेमें–दिपकके तुल्य–और मुखके दिखानेमें दर्पणके समान आपको आपेक्षा नहीं–जो कहोकि श्रीजीके ऐसा स्वरूप होनेमें क्या प्रमाण है–तहां कहते हैं कि–निगमांतस्तुतिपदे–संपूर्ण उपनिपद आपकी स्तुतिके स्थान हैं–अर्थात् वेदही प्रमाण है–इस हेतुसे निरातंक हो–बंधनजनित भयरहितहो–और नित्यहो–तहां हेदेवीजी! मेरी करी जो आपकी स्तुति सो निगमय–वेदकी समान करो ॥ १०१ ॥

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः सुधासूतेश्चन्द्रोपल-
जललवैरर्घ्यघटना । स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधिसौहित्य-
करणं त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम्॥१०२॥

भा० टी०—अत्र यहां पाछेले श्लोकमें श्रीजीसे अपने रचित स्तोत्रके अर्थ वेदकी समानता प्रार्थना करी—तहां अत्र अपनी कर्त्तव्यताको श्रीजीकाही करना मानिकर मातृका रूप श्रीजीकी स्तुति करते हैं—कि हेवर्णमात्रकी जननी ! आपकी वाणी करिकें रचित जो यह स्तुति सो आपके अर्थ निवेदन है—जैसें दीपककरिकें श्रीसूर्य्यनारायणको नीराजन—ओर चंद्रकांतकी जल-बिंदु करिकें चंद्रमाके अर्थ अर्घदान—ओर समुद्रको तृप्तिके अर्थ जलदान—यह जैसे जिनके अर्थ निवेदन किये जाते हैं—तैसेही अपने अर्थ उपकार शून्यों-कोभी—दीपक आदिकोंको अपनी करुणा करिकें सफल करदेंय हैं—तैसें हे जननी! यह स्तुतिभी अपनी कृपा करिकें अपनी ओर से सफल करो ॥१०२॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यवर्य्यश्रीमच्छङ्कराचार्य्य-
विरचितं सौन्दर्यलहरीस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ शुभमस्तु ॥

यः पूर्व्वं करणेन दानददना लोके प्रसिद्धीकृतो देशेऽ-
स्मिन् करनालनाम्नि निवसद्बुधाग्रणीर्वित्तसखः । काली-
दासविदाऽऽगराःस्थितिवता श्रीश्यामलालाभिधः स्वभू-
सिद्धगिरा गिरीन्द्रतनयास्तोत्रं द्विधाख्यापयत् ॥ १ ॥
श्रीमद्विक्रमराजराज्यसमयातीते त्रिनेत्राङ्कभूवर्षे ज्येष्ठ-
तिसेदले शनिहरौ संपूर्त्तिमागादिदम् । यायात्तत्पुनरत्र
सर्वजननीस्तोत्रं श्रुतेर्मत्कृतं व्याख्यानद्वितयं स्मृतेश्च
समतां पौराणभावं भुवि ॥ २ ॥ इति ॥